प्रतिभा की किरण

वर्ष 1983

(राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्,
उत्तर प्रदेश)

NIEPA DC
D02437

राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Aministration
17-B,SriAurbindo Marg,NewDelhi-110016
DOC, No....24.3.7..........
Date.......3.0/41.8.............

"अगर कोई मनुष्य गुफा में रहे, वहीं पर उच्च विचार करे और विचार करता हुआ ही मर जाय तो वे विचार कुछ समय पश्चात् गुफा की दीवारें फाड़ कर बाहर निकलेंगे और सब जगह छा जाएंगे। अन्त में सारे मानव समाज को प्रभावित कर देंगे। विचारों में इतनी शक्ति है।"

—स्वामी विवेकानन्द

प्राक्कथन

राष्ट्रीय तथा राज्य पुरस्कार प्राप्त प्राथमिक स्तरीय शिक्षकों के लिये अध्यापकों के अवकाश शिविर (टीचर्स हालीडे कैम्प) का प्रतिवर्ष आयोजन तथा शैक्षिक स्तरों के समुन्नयन के सम्बन्ध में उनके विचारों का "प्रतिभा की किरण" में नियमित प्रकाशन राज्य शिक्षा संस्थान के वार्षिक कार्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग है। इस श्रृंखला में वर्ष 1983 में आयोजित अध्यापकों के अवकाश शिविर के प्रतिभागी शिक्षकों ने प्राथमिक स्तर की शिक्षा के गुणात्मक सुधार हेतु शिविर में विचार-विमर्श के समय जो विचार व्यक्त किये तथा उक्त विषयक् जो लेख प्रस्तुत किये उनका संकलन "प्रतिभा की किरण" के इस अंक में प्रस्तुत है।

प्रतिवर्ष संस्थान के तत्वावधान में आयोजित होने वाले अध्यापकों के अवकाश शिविर की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें भाग लेने वाले शिक्षकों को प्रमुख स्थानीय शैक्षिक संस्थाओं तथा ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व के स्थलों के वीक्षण और पर्यटन का भी अवसर प्रदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त संस्थान में गोष्ठी के अधिवेशनों में शिक्षण को प्रभावी बनाने तथा नैतिक मूल्यों का विकास करने के उपायों पर वार्ताओं के प्रस्तुतीकरण एवं विचार-विमर्श का कार्यक्रम चलता है। ऐसे ही कार्यक्रम के सातत्व में वर्ष 1983 के अध्यापकों के अवकाश शिविर का आयोजन दिनांक 3 जनवरी, 1983 से 5 जनवरी, 1983 तक राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद में किया गया। इसमें राज्य के विभिन्न अंचलों से आमंत्रित 17 शिक्षकों ने भाग लिया। इस वर्ष 1980 के राज्य पुरस्कृत 4, वर्ष 1981 के राष्ट्रीय पुरस्कृत 8 तथा वर्ष 1981 के राज्य पुरस्कृत 5 शिक्षक सम्मिलित थे।

शिविरावधि में प्रतिभागी शिक्षकों को राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद से संलग्न राजकीय आदर्श शोध विद्यालय, इलाहाबाद के वीक्षण का भी अवसर दिया गया। पूर्व निश्चित कार्यक्रमानुसार गोष्ठी में संस्थान की विभिन्न परियोजनाओं के सम्बन्ध में वार्ताएं प्रस्तुत की गयीं तथा मुक्त ढंग से विचार-विमर्श हुआ। निर्दिष्ट कार्यक्रमानुसार सभी प्रतिभागी शिक्षकों ने "राष्ट्रीय एकता", "विद्यालयों में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे ?", "जनसंख्या वृद्धि और घटती सुविधाएं", "राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका", "मद्य निषेध में अध्यापकों का योगदान", "पारिस्थितिक असन्तुलन कैसे रोकें ?"--आदि प्रकरणों पर अपने लेख प्रस्तुत किये। यथावश्यक संशोधन एवं परिमार्जन के पश्चात् ये लेख संकलित रूप में प्रस्तुत हैं। आशा है कि शिक्षा के गुणात्मक सुधार में रुचि रखने वाले शिक्षकों एवं शिक्षक प्रेमियों को इनसे सहयोगी एवं विचारोत्तेजक विषय सामग्री उपलब्ध हो सकेगी।

अध्यापकों के अवकाश शिविर के आयोजन तथा प्रतिभागी शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत लेखों के संकलन एवं प्रस्तुतीकरण में संस्थान के श्री आनन्द स्वरूप मिश्र, शोध प्राध्यापक का मैं अत्यन्त आभारी हूं जिनके परिश्रम एवं सहयोग से यह अंक प्रकाशित हो सका है।

(सच्चिदानन्द चौलाखण्डी),
आचार्य,
राज्य शिक्षा संस्थान,
उ० प्र०, इलाहाबाद।

विषय-सूची

क्रम-संख्या	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ
1	राष्ट्रीय एकता	श्री शिव नाथ त्रिपाठी	1–3
2	विद्यालयों में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे ?	श्री जगदीश नारायण त्रिपाठी	4–7
3	जनसंख्या वृद्धि और घटती सुविधाएं	श्री शिवमूर्ति सिंह	8
4	राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका	श्री घनश्याम प्रजापति 'रंगल'	9–10
5	जनसंख्या वृद्धि और घटती सुविधाएं	श्री हर नारायण वर्मा	11–12
6	मद्य निषेध में अध्यापकों का योगदान	श्री रज्जब खां 'मानव'	13–14
7	राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका	श्री अमर नाथ पाण्डेय	15–18
8	विद्यालयों में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे	श्री शिवमूर्ति सिंह	19–20
9	राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका	श्री शिव नाथ त्रिपाठी	21–22
10	जनसंख्या वृद्धि और घटती सुविधाएं	श्री नाथू राम तिवारी	23–24
11	विद्यालयों में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे ?	श्रीमती कृष्णा अवस्थी	25–26
12	जनसंख्या वृद्धि और घटती सुविधाएं	श्री गुलाब राम	27–28
13	विद्यालयों में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे ?	श्री नन्दादत्त बड़थ्वाल	29–30
14	विद्यालयों में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे ?	श्री नाथू राम तिवारी	31–32
15	पारिस्थितिक असन्तुलन कैसे रोकें ?	श्री उम्मेद सिंह विष्ट	33–35
16	विद्यालय में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे ?	श्री अमर नाथ पाण्डेय	36–37
17	राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका	श्री शिव सनेही तिवारी	38
18	राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका	श्री हर नारायण वर्मा	39–40

राष्ट्रीय एकता

शिव नाथ त्रिपाठी,
प्रधानाध्यापक, प्रा० वि० रामनगर,
ब्लाक—कल्याणपुर,
जनपद—कानपुर (उ० प्र०)।

1—प्रस्तावना और आवश्यकता।

2—स्वरूप।

3—भाषायी आशंकाओं से राष्ट्रीय एकता को खतरा।

4—अनेक धर्म एवं सम्प्रदाय।

5—राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति।

6—उपसंहार।

प्रस्तावना—

हमारा देश भारतवर्ष क्षेत्रफल एवं जन संख्या की दृष्टि से बहुत बड़ा है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फैले हुए इस विस्तृत भूखन्ड में अनेक धर्म, अनेक सम्प्रदाय एवं अनेक भाषा-भाषी एवं अनेक जातियों के लोग निवास करते हैं। कहीं-कहीं इनमें पारस्परिक एकता है तो यदा कदा आन्तरिक संघर्ष देखने को मिलता है। इतने बड़े गणराज्य में एकता की स्थापना भी एक समस्या है और यह भी निश्चित है कि बिना एकता के कोई भी राष्ट्र समृद्ध नहीं हो सकता। इसलिए भारतवर्ष ऐसे विशाल देश में राष्ट्रीय एकता कैसे स्थापित की जाय, यह एक ज्वलन्त समस्या है। हमारे प्राचीन महर्षियों ने एकता के लिए अनेकशः संपुष्ट कामनायें की हैं। वैदिक महर्षि कामना करते हैं :—

"ॐ सहनाँ ववतु सहनौ भुनक्तुवत सह वीर्यं करवा वहै तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषा वहै॥"

अर्थात् "इस राष्ट्र के समस्त नर-नारी एक साथ रहें, एक साथ भोजन करें, एक साथ बल प्रयोग करें, तेजस्वी विद्या का अध्ययन करें और किसी से द्वेष न करें।"

इन पंक्तियों में राष्ट्रीय एकता के सभी तत्व विद्यमान हैं। इनके अनुसार आचरण करने से निस्सन्देह हम राष्ट्रीय एकता को प्राप्त कर सकते हैं। एकता के अभाव में हम न केवल अपनी ही हानि करते हैं, वरन् देश को पतन के गर्त में ढकेलते हैं। एकता में सहयोग का भाव सन्निहित है, जब तक हममें एकता नहीं होगी, हम एक दूसरे का सहयोग भी नहीं कर सकते और सहयोग से रहित जीवन नीरस हो जाता है। इसलिए हमारा यह नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि हम एकत्र राष्ट्र को एक समझें और इसे एक सूत्र में बांधने में अपने को अर्पित कर दें।

स्वरूप—

राष्ट्रीय एकता का स्वरूप क्या होना चाहिए यह प्रश्न भी विचारणीय है। यदि हम यह चाहें कि सम्पूर्ण देश की वेशभूषा, रहन-सहन और खान-पान और विचार शैली में एकरूपता ला दें तो यह कार्य कठिन होने के साथ-साथ असम्भव भी है। इतने विशाल देश में इस प्रकार का परिवर्तन सम्भव नहीं है। अतः भारत ऐसे विशाल देश में राष्ट्रीय एकता का स्वरूप विचारणीय है। यदि हमारे मस्तिष्क में वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न हो जाय, अर्थात् हम यह सोचने-समझने लगें कि हम चाहे जिस जाति, धर्म, भाषा एवं सम्प्रदाय के हों अन्त में भारतीय ही हैं। हमारी प्रत्येक क्रियाएं देश के समुचित कल्याण के लिए होनी चाहिए। इतने बड़े विशाल भूखंड में विविधता का होना स्वाभाविक है, किन्तु भौगोलिक, धार्मिक या भाषायी विविधता के मध्य भावनात्मक एकता ही देश के लिए सब प्रकार से हितकर है। जिस भूमि पर हम पैदा होते हैं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसका भार हमारे ऊपर हो जाता है और उस भार को हम देश सेवा के द्वारा ही चुका सकते हैं और राष्ट्रीय एकता के अभाव में देश सेवा कदापि सम्भव नहीं है। किसी कवि ने कहा है—

जिस मिट्टी के धूलि कणों में,
लोट-लोट तुम बड़े हुए।
अन्न वारि पाकर समीर तुम,
जिस माता का, बड़े हुए।

ऐसी वीर प्रसविनी के प्रति,
तुम न्योछावर हो जाओ ।
करो आत्म – बलिदान,
देश सेवा में मन से लग जाओ ।

राष्ट्रीय एकता को खतरा—

जिस प्रकार हमारे देश में अनेक धर्म, जातियां एवं सम्प्रदाय हैं, उसी प्रकार यहां अनेक भाषाएं भी हैं । यद्यपि हमारे संविधान ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा का गौरवपूर्ण पद प्रदान किया है और देश में इसके अनुसार कार्य भी होने लगा है फिर भी कुछ लोग ऐसे हैं जो हिन्दी को सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषा न मानकर कुछ स्थानों की भाषा ही मानते हैं और वह इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि हिन्दी को राष्ट्र भाषा का पद प्राप्त हो । वे खतरे का अनुभव करते हैं कि हिन्दी के विकास से हिन्दी वाले ही अच्छे स्थानों पर पहुंचेंगे, शेष अहिन्दी भाषी पिछड़ जायेंगे । परन्तु बात ऐसी नहीं है । बुद्धिमान और परिश्रमी व्यक्ति किसी भी भाषा में अपने विचार अच्छे ढंग से व्यक्त कर सकता है । मंद बुद्धि व्यक्ति अपनी भाषा से भी अच्छी प्रकार नहीं बोल सकता । यह तो मानना पड़ेगा कि इस समूचे राष्ट्र की कोई एक भाषा होनी ही चाहिये, जो सम्पूर्ण देश में प्रयोग की जा सके । इसके लिए निस्सन्देह हिन्दी भाषा ही सक्षम है । जब तक हम हिन्दी को समूचे देश की भाषा नहीं मान लेंगे तब तक हमारा आन्तरिक सम्बन्ध इससे नहीं जुड़ेगा और हम अपने प्रान्त की भाषा को प्रमुख और हिन्दी को गौण मानते रहेंगे । पूरे राष्ट्र के लिये एक सम्पर्क भाषा का होना राष्ट्रीय एकता का द्योतक है । प्रत्येक देश की अपनी एक राष्ट्रीय भाषा होती है और उसी के बल पर वह अपना विकास करता है । चीन जैसे विशाल देश में भी चीनी ही एक राष्ट्र भाषा है । वहां का नागरिक चीनी भाषा में ही अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है । फलतः चीनी का विकास हुआ है । जहां भाषा–भेद होगा वहां राष्ट्रीय एकता को निश्चय ही खतरे का सामना करना पड़ेगा । सर्वोदयी सन्त विनोबा भावे ने पूरे विश्व को एकता के सूत्र में बांधने की कल्पना की थी । उनका विश्वास था कि सम्पूर्ण विश्व की भाषाओं को नागरी लिपि में लिखा जाने लगे तो इससे हम एक दूसरे के सन्निकट आसानी से पहुंच सकते हैं । विनोबा की यह विराट भावना सारी दुनिया को एक सूत्र में बांधने के लिए लालायित थी । इससे हम प्रेरणा ले सकते हैं और हिन्दी को सम्पूर्ण देश की भाषा बनाने का गौरव प्रदान कर सकते हैं क्योंकि यही एक भाषा है जिसमें राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन होने की क्षमता है । हां, अपने देश की अन्य भाषाएं इसकी सहधर्मिणी बनकर इसका विकास कर सकती हैं ।

भाषा की अनेकता से निश्चय ही राष्ट्रीय एकता को खतरा है । अतः हम समस्त भारतीयों को ठंडे दिल से यह सोचना चाहिये कि हम भारतीय पहले हैं और कुछ बाद में और हर प्रकार से भारत की उन्नति करना ही प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है । हम यह नहीं कहते कि क्षेत्रीय भाषाओं को समाप्त कर दिया जाय । हमारा मन्तव्य है कि क्षेत्रीय भाषायें राष्ट्र भाषा के विकास में बाधक न बन कर सहायक बनें । इस बात को देश का प्रत्येक बुद्धिजीवी मानने को तैयार है कि देश में एक राष्ट्रभाषा होना नितान्त आवश्यक है । इसके अभाव में राष्ट्रीय एकता को निश्चय ही खतरा है ।

अनेक धर्म और सम्प्रदाय—

इस देश की राष्ट्रीय एकता को अनेक धर्म और सम्प्रदायों के होने के कारण भी बल नहीं मिलता । यह असम्भव है कि भारत जैसे देश में एक ही धर्म की स्थापना हो, फिर भी हमारे विचारों में महानता होनी चाहिए और हमें चाहे हम जिस धर्म या मत में हों अन्त में हम भारतीय ही हैं । इसलिए भारत की हर प्रकार से उन्नति करना ही हमारा प्रमुख धर्म होना चाहिए । हमारे संविधान ने इसीलिए अपने देश को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया है, जहां प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार धर्मावलम्बन का अधिकार है । मानव धर्म सबसे श्रेष्ठ है—इसीलिए गोस्वामी जी, ने कहा है—"परहित सरिस धर्म नहि भाई" । यदि हमारे भीतर इस मानव धर्म की स्थापना हो जाय तो हम अपने को धर्म और सम्प्रदाय से अलग मानकर राष्ट्रीय एकता स्थापित करेंगे । जब तक हमारे अन्दर स्वार्थपरता या अन्धविश्वास रहेगा, तब तक राष्ट्रीय एकता का अभाव रहेगा । यह कार्य सरकार और धार्मिक तथा सामाजिक नेता भी कर सकते हैं, जिससे सह–अस्तित्व एवं राष्ट्रीय एकता को बल मिलेगा ।

राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति—

धार्मिक अन्धविश्वास, जातिगत आधार, भाषायी विषमता, ऊंच–नीच एवं अस्पृश्यता की भावना से राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुंचती है । यद्यपि आजादी के बाद इन रोगों में कुछ सुधार हुआ है अर्थात् भाषायी विषमता, अन्धविश्वास और जातिगत विषमता आदि में भी कमी आयी है फिर भी अभी बहुत काम करना शेष है, जिसे सच्चे देश हितैषी एवं लोकोपकारी समाजसेवक ही पूरा कर सकते हैं । जब तक हम समग्र देश के लिये कल्याण–कारी भावना नहीं रक्खेंगे, जब तक हम अपने आन्तरिक ईर्ष्या–द्वेष का मूलोच्छेदन नहीं करेंगे और जब तक हमारे अन्दर विराट भावना का अभ्युदय नहीं होगा, हम राष्ट्रीय एकता को भी नहीं प्राप्त कर सकते ।

उपसंहार—

इस प्रकार हमने देखा कि किसी भी देश के समुचित विकास के लिए जहां तकनीक एवं विज्ञान के अन्य साधनों का होना नितान्त आवश्यक है, वहीं राष्ट्रीय एकता का भी। बिना राष्ट्रीय एकता के हम सच्चे राष्ट्र का समग्र विकास कदापि नहीं कर सकते। इसी भावना से अनुप्राणित होकर ऋषियों ने कामना की होगी—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग् भवेत्॥

विद्यालयों में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे ?

जे० एन० त्रिपाठी,
साहित्य रत्न
(राष्ट्रीय पुरस्कृत)
प्रधानाध्यापक, पछायागांव, इटावा ।

पुरा काल से चली आ रही सभ्यताओं की रीढ़ उनकी अपनी शिक्षा प्रणाली हो रही है । शिक्षा को ही हमें संस्कृति की धात्री स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिये । जितनी प्रकार की शैक्षिक विधियों की परम्पराओं का निर्वाह जिस राष्ट्र में होगा, उतनी ही बहुमुखी प्रतिभा होगी । इस संदर्भ में हमारी वैदिक शिक्षा अपना अभूतपूर्व योगदान भारतीय राष्ट्र को दे चुकी है । निदान शिक्षा मानव जीवन की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वह परिमार्जित होकर वाह्य एवं अन्तरस्थ से, दैहिक, दैविक, भौतिक उपलब्धियों की प्राप्ति हेतु, चिरन्तन गतिशीलता की धारा में बहते हुए, जीवन की श्रेष्ठतम अनुभूति शान्ति अथवा मोक्ष प्राप्त करने में कर्णधार बनती है ।

तदनन्तर यही तथ्य है जिसके गर्भ से मानव मस्तिष्क की मौलिकता विषयक अनुभूति का परम्परागत विकास होता है । जिसे हम "प्रतिभा" कहते हैं, अनेक मार्गों से विभिन्न धाराओं में प्रवाहित यही 'प्रतिभा' चिरन्तन सत्य को खोजती हुई विज्ञानमयी हो जाती है । जीवनोपयोगी कलाओं को जन्म देकर सामाजिक संगठन की क्रान्ति करके संस्कृति का सौरभ बिखेर देती है, तथा मानव जीवन का माप दन्ड स्थिर करती है ।

तो इतनी बहुमूल्य वस्तु को हम कहां पायें ? इस शंका को आदि मानव ने उठाया था, जिसे हम बौद्धिक चिन्तकों का प्रयास कह सकते हैं, कालान्तर में मनीषियों का सहयोग अपेक्षित हो गया । फिर तो ज्ञान का संग्रह बनाने की योजना बनी । बस इसी का व्यवहारिक रूप देने का कार्यक्रम ही केन्द्रीयकरण की स्थिति में विद्यालय कहलाया । जहां सभी एकत्रित होकर अपनी प्रतिभा का परिचय देते थे । निदान जिज्ञासु भावना का उदय हुआ । फलतः गुरू-शिष्य के आदर्श ने जन्म लिया । इस प्रकार विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का प्रकटीकरण अपना रंग लाया, जिसने गुरु-शिष्य के सम्बन्धों को नैतिकता के धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया ।

अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को बटोर कर गुरु अपने शिष्यों में ज्ञान की अनेकानेक विभूतियों का बीजारोपण, जाति, धर्म, समाज, राष्ट्रहित की कामना से करता था तथा करता आ रहा है । जिसको अपने में पुनर्स्थापित करने के लिए विद्यार्थी को तन, मन, धन से जुटाना पड़ता था । सेवय-भावना समता एवं व्रत के द्वारा अपने अहं को तिलांजलि देने वाला विद्यार्थी ही ज्ञान-प्राप्ति में अग्रणी रहता था । परन्तु यह व्यक्तिगत विशेषता थी ।

प्राचीं ने व्यक्तिगत प्रहन को राष्ट्रहित में बाधक माना । उनके चतुर्विधि से बटोरे हुए अनुभवों ने स्पष्ट कर दिया कि अनेकत्व को एकत्व में समेटना ही होगा । ताकि वैचित्र्य की कुंठा हमारा सामूहिक भक्षण न कर सके । अतएव नैतिकता के चौखटे का निर्माण, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वान प्रस्थ, सन्यास आश्रमों के रूप में किया गया । राष्ट्रीय जीवन संचालन की नीति स्थिर की गई, जिसके प्रशिक्षण का भार गुरुकुलों पर पड़ा । दिग्गज आचार्यों की देख-रेख में जहां शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे । फलतः सर्व सुखिन सन्तु की कामना साकार रूप में जन्मी तथा आचार विचारों की संहिताओं का विकास वैज्ञानिक एवं प्राप्त अनुभूतियों के आधार पर होता गया । राष्ट्र, धर्म, समाज एक अनुशासनबद्ध पद्धति को अपनाकर चलने से एक ओर नैतिकतापूर्ण, संतुलित हो गया तो दूसरी ओर फल-स्वरूप धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति का अतुलनीय आनन्द प्राप्त करने लगा ।

इसका श्रेय गुरुकुलों अथवा वर्तमान में विद्यालयों को दिया गया, जहां पर प्रत्येक व्यवहार को अनुभवों की कसौटी पर 'सर्वभूत हिताय में लगाया गया । यह सब बिना नैतिक शिक्षण के होना सम्भव नहीं था । इस प्रकार प्रमाणित हो जाता है कि नैतिकता के बिना विद्यालय खोखले और ढीले ही हैं । कुरीतियों के भण्डार हैं । उन्नत राष्ट्रीय परम्परा में पोषक होने के स्थान पर बाधक हैं ।

नैतिक शिक्षा प्राप्त नवयुवक ही राष्ट्रीयता की धुरी हैं । साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान के उन्नयक हैं । अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के मूल्यों के प्रति आस्थावान हैं । राष्ट्र के गौरवान्वित उज्जवल भाल हैं । यदि ये बगड़ गए तो सभी कुछ स्वाहा हो गया । निदान किसी भी राष्ट्र का सर्व प्रथम कर्तव्य अपने नौनिहालों को की ही नैतिकता की कसौटी पर खरे उतरने के लिए शिक्षण देना है ।

इसीलिये शिक्षा जगत से सम्बन्धित विचारक यह अनुभव करने लगे हैं कि प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालयों तक छात्रों का सर्वतोन्मुखी विकास करते हुए समाजसेवी नागरिक की मनोवृत्ति जागृत करना और उन्हें सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु तैयार करना है । नैतिक शिक्षा से छात्रों में नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न होगी और अनुशासनहीनता, अशिष्टता, नियमों का उल्लंघन, भ्रष्टाचार आदि कुरीतियों का निराकरण सम्भव होगा । छात्र समाज सेवा एवं रचनात्मक कार्यों की ओर भी उन्मुख होंगे । अतः नैतिकता की शिक्षा का विद्यालयों में प्रमुख स्थान होना वांछित है ।

शिक्षण कैसा हो ?

युग परिवर्तन शील होता है क्योंकि किसी भी समाज का भविष्य उसके अतीत का प्रतिबिम्ब है। इस परिवर्तन-शीलता में हम जो कुछ पाते हैं, वही हमारी जीवन शक्ति बन जाती है। शिक्षा उसी शक्ति का संचालन करती है अतएव कहना पड़ता है कि युगान्तर से चलती आई शिक्षण पद्धति ने हमें समय-समय पर विभिन्न कलाओं की गति-विधियों के विषय में अन्वेषण करने का अवसर दिया है। महान सभ्यताओं के सृजन का श्रेय इसी अन्वेषण को प्राप्त है। जितनी ही बारीकियों से यह भरीपूरी खोज होगी उतनी ही मानव जीवन की सूक्ष्मतर गतिविधियों की गहरी पैठ में सांस्कृतिक सृजन होगा। अतएव सभ्यताओं के चिरविकास काल से मनीषियों, चिन्तकों, गुरुओं, वाग्मिनिकों आदि ने अपने अपने क्षेत्र में नैतिक शिक्षण पद्धति के द्वारा प्राचीन सभ्यताओं का फलना-फूलना दिखाया है। आज भी प्राचीन कलेवर में युगीन आत्मा की गुंजार से निरन्तर प्रवाह मान है।

सभ्यता के आदि काल से आज तक विश्व में बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद एवं गान्धी जैसी सन्त वाणियों ने हमें यही संकेत दिया है कि यदि तुमने अपनी नैतिकता त्याग दी तो तुम्हारे पास जीने के लिए कुछ भी न रह जाएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि आज हमें पतनोन्मुखी समाज के लिए उत्थान हेतु नैतिक जीवनावलम्बी राह को खोजना होगा जो बिना नैतिक शिक्षण के अप्राप्त है।

सुझाव

नैतिक शिक्षा के अभाव में मेरे मन में कुछ सामयिक सुझाव नैतिक शिक्षा के विषय में आये हैं, जो निम्न-लिखित हैं :

1--भले ही हमारी सरकार ने पाठ्य पुस्तकों में महान पुरुषों की जीवनियां, चरित्र एवं कार्य सम्मिलित किए हैं लेकिन फिर भी नैतिक शिक्षा का अभाव सही है। धर्म तो युग युग से संग्रहित, मानवोत्थान हेतु अनुभवगम्य आचार संहिता है, जिसके द्वारा दैहिक, दैविक, भौतिक शान्ति प्राप्त होती है। फिर क्यों न उसे नैतिक शिक्षण में सम्मिलित किया जाय। लोगों की धारणा है कि भारत में भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी रहते हैं। मेरा इस विषय में उनसे प्रतिवाद है कि वे धर्मावलम्बी नहीं अपितु मतावलम्बी हैं। परन्तु राष्ट्रीयता की दृष्टि से वे एक राष्ट्र प्रेम धर्मावलम्बी हैं। अतएव नैतिक शिक्षा को विद्यालयों में अनिवार्य बनाना चाहिये।

2--आज विज्ञानवाद ही मानव की उत्सुकता को शान्त करने का एक मात्र सहारा हो गया है। वैज्ञानिक धरातल पर ठहरकर मनुष्य अपने विश्वास की थाह लेने को तत्पर है, परन्तु उसकी यह चाहना भौतिकवादी उपलब्धियों तक ही सीमित रहने में सन्तुष्ट होती प्रतीत होती है। परन्तु हमारे पूर्वजों ने अध्यात्मवादी विज्ञान की गहन खोज करके हमें कृतज्ञ किया है तथा नैतिकता में उसको प्रमुखता दी है। जिसके कारण "समस्त लोकः सुखिनः भवन्तु" की दृढ़ नींव रखी जा सकी है। जबकि वर्तमान अणु शक्ति सम्पन्नता में आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को खाये जा रहा है। प्रत्येक विद्यालय में भौतिक एवं अध्यात्मिक विज्ञान की शिक्षा अवश्य ही दी जानी वांछित है।

3--समस्त पापों की जड़ निर्धनता है, एक निर्धन व्यक्ति समाज, राष्ट्र तथा स्वयं के प्रति सदैव कुंठित भावनाओं का शिकार होकर पराधीनता ही भोगता है। अतएव हमारे विद्यालय ऐसे कृषि विषयक रचनात्मक, कलात्मक, औद्योगिक कार्यों को नैतिकता के दृष्टिकोण से अपनाएं जिनके द्वारा मानव-मानव का शोषण न कर सके अपितु सभी अपनी जीविका के प्रति आस्थावान होकर विद्यालय से निकलें। स्वान्तः सुखाय के अनुसार अपना व्यवसाय सरलतापूर्वक चुन सके। लघु उद्योग के माध्यम से विद्यालय भी स्वावलम्बी हो सकेंगे, जीविकोपार्जन की उपलब्धि से भविष्य का नौनिहाल अनैतिक कार्यों की चपेट में नहीं आयेगा तथा अपने राष्ट्र, समाज, परिवार के लिए एक महान नैतिक शक्ति बन सकेगा।

4--स्वास्थ्य एवं चरित्र राष्ट्र की एक आभा है, स्वस्थ्य शरीर भी स्वस्थ्य मस्तिष्क का सृजक है। हमारे पूर्वज आर्यों ने ब्रह्मचर्य आश्रम की योजना वनों में इसी उद्देश्य हेतु की थी। यद्यपि आज वह परिस्थिति नहीं है। परन्तु विद्यालयों में हम अपने नैतिक उत्थान शारीरिक विज्ञान की शिक्षा अवश्य दे सकते हैं। अतएव हमें अनिवार्यतः उसकी ओर लगना होगा। यद्यपि हमारी सरकार इस ओर विशेष प्रयत्नशील है। मेरे विचार से प्राकृतिक चिकित्सा को प्रत्येक विद्यालय अपनाएं जो संयम पर आधारित है क्योंकि संयम ही नैतिकता की नींव है।

5--नैतिक, सामाजिक एवं शारीरिक शिक्षा को प्रधानता देते हुए हमारी सरकार को चलचित्रों पर भी प्रतिबन्ध लगाना चाहिए एवं हमारे चलचित्रों के निर्देशकों एवं निर्माताओं तथा कहानीकारों को भी अपने देश के नौनिहालों के प्रति सोचना चाहिए एवं विद्यालयों में भी अनिवार्य रूप से ऐसे चित्रों को जो नैतिकता तथा सामाजिकता से परिपूर्ण हों, दर्शन कराना चाहिए। जिससे यह कहावत चरितार्थ हो सकने की पूर्ण संभावना की जा सके कि आज का बच्चा कल के देश का कर्णधार होगा--कहा भी है कि नाव का खिवैया ही जब अनाम होगा तो नाव भी दिशाहीन होगी जिससे लक्ष्य की ओर जाने का उद्देश्य भी रेत में महल बनाने के सदृश होगा।

नैतिक शिक्षा के स्तम्भ में कुछ नैतिक प्रयास—

विद्यालय के प्रति कर्त्तव्य

(1) आत्मीयता की भावना ।
(2) गुरु भक्ति की भावना ।
(3) अनुशासन पालन ।
(4) उपकरण सदुपयोग ।
(5) पुस्तकालय सदुपयोग ।
(6) भवन–उपवन संरक्षण ।

समाज के प्रति कर्त्तव्य

(1) उत्तरदायित्व निर्वाहन ।
(2) दुखी जनों के प्रति सहानुभूति ।
(3) पराहित साधन ।
(4) शुभ कर्मों में सहयोग ।
(5) धार्मिक सहिष्णुता ।
(6) संकीर्ण भावनाओं का त्याग ।

राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य

(1) विश्व बन्धुत्व की भावना ।
(2) सबके कल्याण की कामना ।
(3) दूसरे देशवासियों की यथा अवसर सहायता करना ।
(4) पर्यटकों का सम्मान करना ।

परिवार के प्रति कर्त्तव्य पालन

(1) पूज्य जन सेवा ।
(2) अभिवादन शीलता ।
(3) आज्ञापालन ।
(4) उदारता ।
(5) आत्मीयता ।
(6) कामों में सहयोग ।
(7) स्वार्थ त्याग ।

सत्कर्म करना

(1) ईश वन्दना व ध्यान ।
(2) मन वशीकरण ।
(3) सच्चरित्रता ।
(4) सत्यनिष्ठा ।
(5) ईमानदारी ।
(6) परोपकारी ।
(7) जीवदया ।

स्वयं के प्रति कर्त्तव्य पालन

(1) समय पालन ।

(2) बौद्धिक–विकास ।

(3) शारीरिक विकास ।

(4) आत्मिक विकास ।

(5) श्रमशीलता ।

सद्व्यवहार करना

(1) विनम्रता ।

(2) सबके प्रति सद्भावना व सद्व्यवहार ।

(3) शिष्टाचार ।

(4) बड़ों का सम्मान ।

(5) छोटों को प्यार करना ।

वर्जित कर्म त्याग करना

(1) धूम्र पान ।

(2) अभद्रता ।

(3) पर अहित करना ।

(4) झगड़ा करना ।

(5) परनिन्दा करना ।

(6) कामोत्तेजक साहित्य पठन ।

(7) गाली देना ।

(8) हानिकारक चलचित्र दर्शन ।

(9) खाने, बोलने तथा सोने की अति ।

(10) परीक्षा में नकल करना ।

मैं विद्यार्थियों से उक्त स्तम्भों के परिपालन की अपेक्षा करता हूं—यदि वे उक्त प्रयासों से दूर भागते रहे तो उनका भविष्य उज्ज्वल भविष्य की ओर न जाकर अन्धकार के ऐसे गर्त में गिरता चला जाएगा कि उनके लिए यही कहावत भविष्य में चरितार्थ होगी कि "फिर पछताये होत क्या जब चिड़ियां चुग गई खेत" ।

साथ साथ में अध्यापक बन्धुओं से भी यह अपेक्षा करता हूं कि वे छात्रों द्वारा किए गए प्रयासों तथा कार्यों का मासिक एवं वार्षिक मूल्यांकन द्वारा उत्तम, अच्छा और औसत श्रेणियां प्रदान कर वार्षिकोत्सव पर पुरस्कृत भी करें ताकि छात्रों के कोमल हृदय–पटल पर नैतिक एवं सामाजिक शिक्षा की गहरी छाप लग सके । जो उन नौनिहालों को उज्ज्वल भविष्य के लक्ष्य की ओर ले जाये ।

———

जनसंख्या वृद्धि और घटती सुविधाएं

शिवमूर्ति सिंह,
प्रधानाध्यापक, प्रा० वि० धोसिया,
जनपद वाराणसी ।

आज के इस भौतिकता वादी युग में जिसे देखो भागा जा रहा है । पशु-पक्षी, मनुष्य, मोटर-गाड़ी, ट्रेन, वायु-यान, जलयान तथा समय सबके सब भाग-दौड़ की प्रतियोगिता में भागीदार हैं । ऐसा प्रतीत होता है जैसे किसी को बात करने अथवा अपने ही किसी कार्य को करने की फुर्सत नहीं है । यदि आप किसी से पूछें कि अरे भाई, आजकल आप दिखाई ही नहीं देते, जैसे आपने आना-जाना ही छोड़ दिया है तो आपको उत्तर मिलेगा कि क्या करें ? समय ही नहीं मिलता । इन उत्तरों से ऐसा आभास होता है कि मनुष्य के साथ-साथ समय को भी फुर्सत नहीं है । अथवा यह कहिए कि इस भाग-दौड़ के युग में समय, मनुष्यों से कहीं आगे है । यदि मनुष्य प्रातः चार बजे उठना चाहता है, तो उठने पर समय-घड़ी पांच बज जाने की सूचना देती है ।

विचार करें कि ऐसा क्यों ? शायद एक ही उत्तर मिलेगा कि पृथ्वी पर मनुष्य का घनत्व । सुरसा की भांति बढ़ती आबादी शायद देश को निगल जाना चाहती है । जहां भी देखें, मोटर, बस, ट्रेन, सड़कें आदि भीड़ में तिरोहित सी होती जा रही हैं । इसका प्रभाव कृत्रिम और प्राकृतिक सुविधाओं पर पड़ रहा है । गांव या शहर जिधर भी देखें इस बढ़ती आबादी के दुष्प्रभाव से प्रकृति प्रदत्त सुविधाएं लोप सी होती जा रही हैं और तो और जब निवास की सुविधाओं का ह्रास होता जा रहा है तो कैसे समझा जाय कि मनुष्य जीवनयापन की अन्य सुविधायें प्राप्त करता रहेगा । निस्संदेह यदि जनसंख्या वृद्धि इसी प्रकार होती रही तो आम आदमी का जीवन दूभर हो जायेगा । इस बढ़ती आबादी का दुष्प्रभाव चतुर्दिक पड़ रहा है ।

कहा जाता है कि पारिवारिक विग्रह का कारण पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव है । किन्तु मेरे विचार से पाश्चात्य सभ्यता से अधिक आबादी के घनत्व का दुष्प्रभाव ही परिवारों को तोड़ रहा है । इसके प्रभाव के प्रति फलस्वरूप गांवों में सहकारिता की भावना भी समाप्त होती जा रही है । जो भारतीय गांव भारतीय संस्कृति के प्रतीक थे आज वे ही आपसी असहयोग का दिग्दर्शन करा रहे हैं । आखिर क्यों ? केवल यही कि आबादी का भार सहन कर पाना असम्भव सा होता जा रहा है । परिणामस्वरूप सारी सुविधाएं समाप्त सी होती जा रही हैं ।

प्राचीनकाल में जो भारत धन-धान्य से पूर्ण था, घी-दूध की नदियां बहती थीं । आज हरित क्रान्ति के बावजूद विदेशों से खाद्यान्न का आयात किया जा रहा है । घी-दूध, फल, सब्जी सभी के मूल्यों में गुणात्मक वृद्धि होती जा रही है । औसत आय के परिवार दैनिक व्यय का भार वहन नहीं कर पा रहे हैं । जिसका परिणाम अपराधों की वृद्धि के रूप में देखा जा सकता है । आज के नवयुवक अपनी भौतिक मांगों की पूर्ति हेतु जघन्य अपराध कर रहे हैं । अपराधों की संख्या और प्रकार में परिमाणात्मक वृद्धि होती जा रही है । समाज और सरकार इन अपराधों को रोकने में कठिनाई का अनुभव कर रही है । ऐसा आभास हो रहा है कि निकट भविष्य में जीवन यापन की सारी सुविधायें समाप्त हो जायंगी, सामाजिक अपराध बढ़ेंगे और मनुष्य का जीवन दूभर हो जायेगा ।

हमारे देश में दो करोड़ बीस लाख बच्चे प्रति वर्ष जन्म ले रहे हैं । इसकी आधारभूत आवश्यकताएं जैसे पौष्टिक आहार, वस्त्र, शिक्षा के लिए विद्यालय तथा जीवन की अन्य आवश्यकतएं जुटा पाना कठिन है । विद्यालयों में प्रवेश नहीं हो पा रहा है । यद्यपि विद्यालयों की संख्या बढ़ती जा रही है । न तो अच्छी शिक्षा मिल पा रही है और न ही पौष्टिक एवं सन्तुलित भोजन ही मिल पा रहा है, फलस्वरूप विकृतियां उत्पन्न हो रही हैं । अपराध बढ़ रहे हैं । परिवार में आपसी सम्बन्ध बिगड़ रहे हैं । कलह बढ़ रहा है । परिणामस्वरूप चारों ओर अशान्ति फैल रही है । तात्पर्य यह कि बढ़ती जनसंख्या का अनावश्यक भार संभाल पाना व्यक्ति, परिवार, समाज और देश के लिए अत्यन्त कठिन हो गया है ।

भारत की वर्तमान जनसंख्या अड़सठ करोड़ से अधिक है । सरकारी आकलन के अनुसार सन् 2000 तक देश की आबादी एक अरब हो जायगी । जिसे संभाल पाना देश के लिए एक दुरूह कार्य होगा । इसी संदर्भ में भारतीय बीस सूत्री कार्यक्रम में परिवार नियोजन पर भी पर्याप्त जोर दिया जा रहा है । किन्तु देखना यह है कि समाज का प्रत्येक वर्ग उसे अर्थात् परिवार कल्याण और नियोजन को किस सीमा तक अपना पाता है । देश के ही कुछ वर्ग अभी तक परिवार नियोजन कार्यक्रम की आलोचना करते हैं । जब कि मुस्लिम देशों में भी परिवार नियोजन कार्यक्रम अपनाया जा रहा है ।

निस्संदेह परिवार नियोजन कार्यक्रम से ही कुछ आशाएं की जा सकती हैं । इस सम्बन्ध में विस्तृत कैम्प लगाया जाय । लोगों को नियोजन के लाभ समझाए जायं और नियोजन हेतु विभिन्न सुविधएं प्रदान की जायं । इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाया जा सकता है ।

अन्त में यह कहना समीचीन होगा कि परिवार नियोजन कार्यक्रम से ही प्राप्त भौतिक सुविधाओं का लाभ राष्ट्र को मिल सकता है । साथ ही देश प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है ।

राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका

श्री घनश्याम प्रजापति 'दंगल,'

जू० वि० प्रा० पा० महमूदपुर–कटया,
जनपद बस्ती, उत्तर प्रदेश ।

प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ है बड़ी उमर वालों को शिक्षा का ज्ञान देना, जो गुलामी परम्परा के कारण असुविधा वश छोटी उमर में शिक्षा नहीं पा सके और प्रौढ़ हो गये । प्रौढ़ों से ही सारे समाज का सुघर ढांचा बनता है । जब देश के प्रौढ़ ही अनपढ़ रहे तो देशोत्थान होने से रहा । जिन महान शिक्षाविदों के मस्तिष्क में यह योजना आई वे अच्छे प्रबुद्ध हैं, मगर यह योजना सही ढंग से सम्पन्न और सफल हो सके तो बड़ी बहादुरी का काम हो जाय ।

प्रौढ़ शिक्षा हेतु सरकार अत्यन्त प्रयत्नशील है, समाज के गिरते हुए व्यावहारिक व्यवहार को देखते हुए चिन्तित भी है, मगर क्या करे–प्रौढ़ शिक्षा कार्यान्वयन एक बहुत बड़ी समस्या होकर सामने खड़ी है, कितना धन जन इसमें लगा है । परिश्रम अधिक उल्लेख्य नगण्य । सबसे बड़ी बात यह है कि जिनके लिए यह योजना बनी उसी को दिलचस्पी नहीं "जिसको करे आप आप उसको आवै जूड़ी ताप" ।

राष्ट्रीय विकास के लिए इस योजना की नितान्त आवश्यकता है आम समाज जब तक शिक्षित सुसभ्य नहीं होगा, राष्ट्र विकास की गाड़ी उलझी ही रहेगी सामाजिक सहकार खटाई में पड़ा रह जायेगा । तारीफ की बात तो यह है कि जरूरतमन्द जिस जरूरत को अति आवश्यक समझता है उसी के लिए दौड़ करता है । आज का प्रौढ़ पेट पालन के स्वार्थ में इतना लवलीन दिखाई देता है कि उसको अपने अतिरिक्त राष्ट्र विकास जैसा महत्वपूर्ण कार्य नजर ही नहीं आता । देश के प्रौढ़ समाज को जरा भी फुरसत नहीं कि वह अपने बिगड़े कार्य को सुधारे । लाचार है आज के वैज्ञानिक युग से व्यावहारिक आवश्यकताएं इतनी बढ़ गयी हैं कि उनकी पूर्ति में हैरान परेशान विक्षुब्ध सा दिखाई देता है, चौराहे का भागता हुआ मुसाफिर हो गया है ।

क्या ही अच्छी बात होती कि हमारे राष्ट्र का प्रौढ़ समाज अपने आपा–धापी स्वार्थ में ढील देता । राष्ट्रीय विकास का जो शुभ अवसर हाथ आया, वह कितने बलिदानों की उपलब्धि है कितने अमर शहीदों के जीवन संग्राम के बदले में मिला है, अपनी भारत भूमि में हमारे जीवन का क्या महत्व है समझ में आने की बात है । विकसित राष्ट्र की इकाई प्रगतिशील व्यक्ति परिवार ही है । अगर हमारे देश का गांव परिवार शिक्षित, सभ्य हो जाय तो राष्ट्रीय विकास होने में देर न लगे ।

प्रौढ़ों के परिवार के बच्चे गांव के ही तो विद्यालयों में शिक्षा लेने आते हैं, जैसे प्रौढ़ों का समाज है वैसे ही विद्यार्थियों के पढ़ने का रिवाज है । प्राचीन काल में शिक्षा सदन दूर दूर थे । तक्षशिला, नालन्दा जैसे विद्यालयों में बड़े पहुंच वाला विद्यार्थी ही पहुंच पाता था, शेष आम जनता पशु–पालन का धन्धा अधिक करती थी और बच्चे पशु सेवा में ही लिपटे रहते थे । बड़े–बड़े राजे–महाराजे भी गोपालन और गोदान जैसे पावन कार्य किया करते थे, पुराणों में राजा दिलीप की नन्दिनी गौ–सेवा, कृष्ण के गौ चराने का इतिहास, बंसी बजाने की कला, राजा त्रिशंकु, राजा कर्ण, राजा नृग आदि की गोपालन और गोदान धार्मिक इतिहास में प्रसिद्ध है मगर आज मानव समाज वृद्धि के कारण देश–संसार की परिस्थिति बदल गयी, जंगल भूमि की कमी के कारण धंधों में परिवर्तन लाने हेतु समाज को मजबूर होना पड़ा, वह भी ऐसे धंधे जिनमें अधिक पूंजी, होशियारी, चतुराई की जरूरत पड़ती है । शान्ति, धैर्य और गंभीर मानवता का लोप हो गया । शरीर को स्वस्थ रखने का भी अवकाश नहीं मिल पा रहा है समाज की शारीरिक क्षमता उद्विग्नता में बदल गयी चारों तरफ भाग–दौड़, छीना–झपटी, आपा–धापी का बवण्डर खड़ा हो गया ।

ऐसी दशा में देश की एकरूपता स्वतंत्रता की रक्षा कैसे हो सकेगी । यत्न करना इंसान का काम है कि हमारा पतन न हो ।

प्रौढ़ शिक्षा के संदर्भ में सबसे बड़ी समस्या है प्रौढ़ जनों की उदासी । जीवन के झन्झावातों में "किसी तरह" जीवन व्यतीत करना ही स्वीकार हो गया । पढ़ाने वाला शिक्षक पल्ला फैलाये तकते रहे, रजिस्टर में नाम बहुत है मगर उपस्थिति नगण्य है । प्रबुद्ध जन, सरकार क्या करे, टूटे हुए बांध की जलराशि का सम्भार कौन करे, कैसे करे ।

देश का प्रौढ़ समाज मिट्टी की पकी हंडिया के समान है टूटने पर फिर बन नहीं सकता । आज के वैज्ञानिक युग में अधिक ताप ऊर्जा देकर कठिन से कठिन धातु को पिघलाया जा सकता है मगर कुछ प्रबुद्ध जनों की राय से इस अनहोने कार्य हित इतना धन, बल खर्च करना बुद्धिमानी का काम नहीं होगा। 'एकहि साधे सब सधै' हमें अधिक ध्यान विद्यालयों में नैतिक शिक्षा की तरफ देना है । बागडोर हाथों में कसकर पकड़नी चाहिए । भूत व्यतीत हुआ भूलन में, आगम हाथ से निकल न जाय । प्रौढ़ शिक्षा का निहोरा हम नैतिक शिक्षा पर सारा बल देकर प्राप्त कर सकते हैं मगर विद्यालयों की शिक्षा से हम समाज को सन्तोष दे सकें तो समाज शिक्षाविद् शासकों की तारीफ ही करेगा, सहयोग के लिए दौड़ पड़ेगा ।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में जो समय हमारा बचता है, कहां और कैसे लगावें । समाज में बेकारी का राज्य हो गया है, खाली दिमाग को खुराफात सूझती है । वैसे इंसान अगर काम करे तो गृहस्थी में तमाम काम भरे पड़े हैं, जिनके न होने से देश की सारी गृहस्थी धूमिल हो गयी है, गांवों की रोशनी गिर गयी है, मगर जमाने की झाड़फनूस और साज-सज्जा के आकर्षण ने हमारे देश की युवा शक्ति को उद्वेलित कर दिया है । अपनी जन्म भूमि के पैतृक पेशे में आदी बनने से दूर चला गया । घरेलू उद्योग धन्धों के परिश्रम और गर्दा-गुबार से कतराने लगा । गांव से भाग कर नगर की गलियों को खाक छानने हेतु स्वभावतः मजबूर हो गया। इन सारी गिरावट का कारण विद्यालयों की शिक्षा में ही देखा जा रहा है । प्रौढ़ तो दूर रहे हमारा अबोध बालचर समाज ही हाथ तले से निकला जा रहा है । प्रौढ़ों को पढ़ाने के बदले उनके बच्चे उसकी निगाह में सही ढंग से शिक्षित होकर उनके काम आते तो उन्हें पूरा सन्तोष रहता ।

भगवान करे हमारे कर्णधारों के नवीन ओज खोज से विद्यालयों में नैतिक शिक्षा का माहौल सुधरे । प्रौढ़ शिक्षा के वातावरण और जन-समाज के लाभ उठाने की उदासी को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि प्रौढ़ शिक्षा कार्य हेतु अधिक परिश्रम, पूंजी, के बदले उपार्जन, उपलब्धि की प्राप्ति कम ही रहेगी ।

जनसंख्या वृद्धि और घटती सुविधाए

श्री हर नारायण वर्मा,
प्रधानाध्यापक,
बेसिक प्राइमरी पाठशाला,
मालवीय नगर, कोंच,
जनपद जालौन ।

जनसंख्या वृद्धि की समस्या आज न केवल भारत की अपितु विश्व के अनेक राष्ट्रों की एक अहम समस्या है। राष्ट्र के तत्वों में जनसंख्या और भू-भाग ऐसे दो प्रमुख तत्व हैं जो अन्योन्याश्रित हैं । सर्वप्रथम भू-भाग तत्पश्चात् भू-भाग पर निवास करने वाली जनसंख्या, इसके पश्चात् जनसंख्या के निर्वाह के अन्य संसाधनों पर ध्यान आकर्षित होता है । इस निबन्ध के अन्तर्गत हम विचार करेंगे कि भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या एवं तद्नुसार सुविधाओं का ह्रास किस स्थिति तक है ।

इस पृथ्वी मण्डल पर मानव ने जब प्रारम्भ से आंखें खोलीं तो उसने अपने को सघन निर्जन जंगलों में पाया परन्तु शनैः शनैः उसने अपना विकास किया और सुख से रहने के लिये मकान, कपड़े तथा खाद्य सामग्रियों की व्यवस्था की । इन व्यवस्थाओं के संदर्भ में उसने आपस में त्याग, प्रेम, सहानुभूति, सहयोग एवं सेवा को गुणों का आधार बनाकर प्रगति मार्ग का अनुसरण किया ।

मानवीय संस्कृति में आर्थिक विकास ने प्रमुख रूप ग्रहण किया । प्रत्येक देश में आर्थिक विकास के लिये प्राकृतिक संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है । चूंकि प्राकृतिक संसाधनों की एक निश्चित सीमा होती है, इसलिये यदि जनसंख्या का विस्तार अनवरत तीव्रगति से होता जाये तो एक समय ऐसा अवश्य आ जाता है कि जनसंख्या की सुख-सुविधा के लिये प्राकृतिक संसाधनों का अभाव अनुभव होने लगेगा । आज हमारा देश एक ऐसी ही विषम परिस्थिति में जकड़ता चला जा रहा है । संसार के समस्त देशों में चीन को छोड़कर भारतवर्ष की जनसंख्या सर्वाधिक है । विगत जनसंख्या गणना सम्बन्धी आंकड़ों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस देश की जनसंख्या वृद्धि की दर विश्व के विकसित राष्ट्रों से अधिक है । अतः आवश्यक हो जाता है कि उन कारणों पर भी विचार करें जिनके प्रभाव से जनसंख्या इस तीव्रगति से बढ़ रही है :--

1--हमारे देश का सामाजिक संगठन, धर्मान्धता, सामाजिक कुरीतियां एवं प्राचीन परम्परायें जनसंख्या वृद्धि में प्रधान कारण हैं ।

2--भारत एक कृषि प्रधान देश है । वैज्ञानिक विधियों के अभाव में प्राचीन ढंग से कृषि की जाती है तथा नवीन कृषि उपकरणों की प्रयोग विधि का भी समुचित ज्ञान नहीं है । अतः उर्वरा भूमि होने के उपरान्त भी कृषि उत्पादन कम है तथा निरन्तर जनसंख्या की वृद्धि से उत्पादक वस्तुओं की कमी प्रतीत होने लगती है । सिंचाई सुविधाओं के अभाव में मानसूनी जलवायु में यदा कदा पानी खेतों में उचित समय पर नहीं मिल पाता है, अतः प्यासी एवं उत्पादक भूमि से कम उत्पादन हो पाता है । सरकार उक्त समस्याओं को हल करने का प्रयत्न कर रही है फिर भी अभी बहुत कुछ करना है । कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिये सिंचाई आदि की सुविधाएं उपलब्ध होने के साथ जनसंख्या में भी वृद्धि हुई है । इन कृत्रिम सुविधाओं के आधार पर तमाम नई-नई बस्तियां बन गयी हैं और कुछ लोग सुखपूर्वक रहने लगे हैं ।

3--भारत में अधिकांश लोग निर्धनता या मध्यम श्रेणी का जीवन-यापन कर रहे हैं । ग्रामीण अंचलों में मनोरंजन के साधनों की कमी व अधिक संतानोत्पत्ति को सौभाग्य का एक अंग मानना भी विशेष कारण है ।

4--इसके अतिरिक्त विश्व के अन्य तमाम राष्ट्रों में वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ भारतवर्ष में भी वैज्ञानिक प्रगति हुई । अनेक रोग समूल नष्ट किये गये । अतः मृत्यु दर पहले की अपेक्षा घट रही है और परिणामस्वरूप जनसंख्या बढ़ रही है ।

जनसंख्या की वर्तमान वृद्धि देश के मनीषियों, राजनीतिज्ञों, समाज सेवियों के मस्तिष्क का प्रमुख विचारणीय विषय बन गया है । कोई समय था जब अधिक संतान को समाज में भाग्यशाली कहा जाता था लेकिन आज समय परिवर्तित हुआ है । उक्त सामाजिक मान्यता बिलकुल ही बदल गयी है । समाज का प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करने लगा है कि हमें सीमित परिवार बनाना चाहिये । आज समाज में बड़ा परिवार सौभाग्य का सूचक नहीं रह गया है । विचार करें सामाजिक मान्यता में ऐसा परिवर्तन क्यों आया ? जहां तक मानव समाज की वृद्धि का प्रश्न है कोई ऐसा विचारक नहीं होगा जो यह कह सके कि मानव जन्म निरर्थक या हानिकारक है । आज अधिक संतान उत्पत्ति पर रोक लगाने का जो विचार बन रहा है उसके पीछे प्रमुख आधार है जनसंख्या की सुख-सुविधा के लिये प्राकृतिक संसाधनों का सीमित होना और इस जनसमूह के लिये उनकी मात्रा का अपर्याप्त होना ।

मानव जैसे ही जन्म लेता है उसकी जीवन निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताओं में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जाती है। भोजन, कपड़ा तथा रहने को मकान के अतिरिक्त समाजोपयोगी अन्य वस्तुओं की आवश्यकता भी वह अनुभव करता है। चूंकि जब संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है और सुविधाओं के साधन उसी गति से कम हो रहे हैं। इस कारण जनमानस आन्दोलित हो रहा है। चारो ओर वर्ग संघर्ष, कोलाहल एवं अशान्ति का वातावरण छाया है। जन संख्या तथा उसकी सुविधाओं में सन्तुलन आवश्यक है। विश्व के वे राष्ट्र जहां इन दोनों में सन्तुलन है, अत्यधिक शान्तिपूर्वक सुरक्षात्मक ढंग से अपना विकास कर रहे हैं। सोवियत रूस इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। सोवियत रूस की जन संख्या जिस स्थिति में है उससे अच्छी स्थिति में वहां पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन है। परिणामस्वरूप वहां का बच्चा-बच्चा सुख-सुविधा पूर्वक अपना जीवन यापन कर रहा है। आपसी कलह विद्वेष एवं संघर्ष का वातावरण अपेक्षाकृत कम है।

अब प्रश्न उठता है कि जन संख्या और तदनुरूप सुविधाओं में संतुलन बनाये रखने में हमें कौन-कौन से साधनों को अपनाना चाहिये ताकि यह असन्तुलन किसी सीमा तक समाप्त हो सके। यह तो सुनिश्चित ही है कि इसके दो पक्ष हैं :—

1—जन संख्या वृद्धि पर रोक।

2—सुविधाओं की वृद्धि पर प्रोत्साहन।

भारतवर्ष में जन संख्या की वृद्धि पर रोक लगाने के तमाम प्रयास किये जा रहे हैं। इन समस्त प्रयासों का परिणाम जिस गति से सामने आना चाहिये, नहीं आ पा रहा है। लेकिन हमें निराश नहीं होना चाहिये। इसी प्रकार यदि हम प्रयत्नशील रहे तो एक दिन हम निश्चित ही सफलता प्राप्त कर लेंगे। सन्तति निग्रह के कृत्रिम उपाय अनेकों प्रकार से समाज में प्रचलित हैं। भारतीय जनता इन्हें अपनाने में रुचि भी ले रही है। अतः आगामी जनगणना तक अपेक्षित परिणाम प्राप्त होने की पूर्ण सम्भावना है।

दूसरा पक्ष है सुविधाओं में विस्तार करना। सुविधाओं की श्रेणी में आने वाली सामग्री को हम दो वर्गों में बांट सकते हैं :—

1—प्राकृतिक।

2—कृत्रिम।

जहां तक प्राकृतिक सुविधाओं का सम्बन्ध है कुछ सुविधाएं तो सीमित हैं जैसे भूमि इसे प्रयास करने पर भी नहीं बढ़ाया जा सकता। इसके अतिरिक्त इस विशाल पृथ्वी मण्डल पर जो प्राकृतिक संसाधन हैं उनका पर्याप्त मात्रा में उपयोग करना चाहिये। हमारी वसुन्धरा रत्न गर्भा कही गयी है। बस प्रयत्न एवं परिश्रम की कमी है।

कृत्रिम सुविधाओं में औद्योगिकोपयोगी उपकरण प्रमुख हैं। हमारा देश सदियों से परतन्त्र रहा है, अतः इसका औद्योगिक विकास अवरुद्ध रहा। यही कारण है कि जन संख्या और सुविधाओं में इतना अधिक असन्तुलन व्याप्त हो गया। वर्तमान सरकार ने औद्योगीकरण को प्रमुख स्थान दिया है। जगह-जगह नये-नये उद्योग लगाये जा रहे हैं। पानी, बिजली आदि की सुविधायें अधिक से अधिक बढ़ाई जा रही हैं। यातायात के साधनों में लगातार वृद्धि हो रही है। इसका विकास एवं विस्तार अद्वितीय है। इन संसाधनों के क्षेत्र में लगातार वृद्धि और जन संख्या के क्षेत्र में लगातार ह्रास देश के विकास में सहयोग प्रदान करेगा, ऐसी पूर्ण आशा है।

———

मद्यनिषेध में अध्यापकों का योगदान

श्री रज्जब खां 'मानव'

प्रधानाध्यापक,

जूनियर बेसिक विद्यालय, कटरा, नगर क्षेत्र,

जनपद बांदा ।

विश्व का सबसे बड़ा सत्य यही है कि जो आज है वह कल नहीं रहेगा ।

कल कली खिल गई थी, फूल।

फूल कुम्हला के आज खाक हुआ ।।

यह वयोवृद्ध गगन अपने अतिरिक्त किसी को भी दो-चार दिन एक स्थान पर एकत्र होकर मनोरंजन करना अपनी आंखों से नहीं देख सका है । पुरातन से मानव, गगन और पृथ्वी के दोनों पाटों के बीच निरन्तर पिसता चला जा रहा है और पिसता रहेगा ।

जब मनुष्य पृथ्वी पर अवतरित होता है तो यहां आकर अपने जीवन के उद्देश्य को भूल जाता है और जीवन संघर्ष में फंसकर अपने अभीष्ट को याद को विस्मृत कर देता है । परम्परागत बन्धनों से बन्धित, धरा पर रेंगता रहता है । इसका प्रतिक्षण, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और पारिवारिक समस्याओं के समाधान हेतु संघर्ष करने में व्यतीत होता है, अन्ततः जीविकोपार्जन जीवन का लक्ष्य बन जाता है । मनुष्य कभी-कभी धन उपलब्ध करने या जीविकोपार्जन के प्रयास में कुछ ऐसे अवांछित कार्य कर डालता है कि फिर उस कालिमा को नहीं मिटाया जा सकता है ।

दैनिक आपदाओं की चोट, मनुष्य की जीवन वीणा के तारों को झंकृत कर देती है । जीवन-यापन से तृषित, समाज के शोषण से विह्वल, पारिवारिक गतिविधियों से व्याकुल मानव चारों ओर कानून की ऊंची दीवार देखकर, अपने आंसुओं को पीकर प्रायश्चित करने के लिये देवालय के कपाट खोलकर भगवान का सान्निध्य प्राप्त करता है । क्षणों में नहीं वर्षों में भी मन को शान्ति नहीं मिल पाती । द्रुतगामी मन किसी भांति वहां नहीं रुक पाता । प्रतिक्षण प्रतिदिन अपना रूप बदलता है मगर अपना हृदय नहीं बदल पाता । मन्दिर में मन के मनोरंजन, बहलने के लिये पालना नहीं मिल पाता कि वह उसमें सो जाए, फलतः शान्ति की खोज में निकला मानव वहां से भाग निकलता है । चित्रालय के रजत पट पर निर्देशक की काल्पनिक रंगीन कथाओं के इठलाते हुए सौन्दर्य के आगोश में थके यात्री की भांति तीन-चार घन्टे विश्राम करता है । मगर वह आकर्षक दृश्य फिर स्वप्न की भांति अन्तर्धान हो जाता है । समस्याओं द्वारा खदेड़ा हुआ इन्सान, जिसके पीछे जिन्दगी-मौत बन कर पीछा कर रही है, बचना चाहता है । थकान को भूला कर कुछ विश्राम करना चाहता है, दौड़ता हुआ मदिरालय पहुंचता है, एक घूंट गले के नीचे उतारी कि वह एक नये संसार में पदार्पण करता है । अपने को बिल्कुल ही भूल जाता है ।

जहां कुछ सोचने का वक्त मिलता है फुरागत से।

उसे मकतब नहीं कहते, उसे मयखाना कहते हैं ।।

अभी तक यह खोज नहीं हो पाई कि मनुष्य शराब क्यों पीता है ? इसमें कौन से गुण हैं ? जिसके कारण इन्सान भागता चला जा रहा है, पास में पैसा हो या न हो, वह मदिरापान करने अवश्य जाएगा, चाहे जहां से धन प्राप्त करे । यह सत्य है कि इसके परिणाम बहुत घातक और विनाशकारी हैं । मगर पीने के बाद जिस आनन्द में विलीन हो जाता है उसको होश आने के बाद बखान ही नहीं किया जा सकता ।

सामाजिक जीवन के सर्वेक्षण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि इसके आदी हो जाने पर मनुष्य के जीवन की वास्तविकता समाप्त हो जाती है । पारिवारिक जीवन नर्क बन जाता है । सामाजिक आदर्श अदृश्य हो जाता है, इसीलिये इस्लाम धर्म में शराब का पीना तो दूर रहा, उसका छूना ही हराम है । यदि धरती में मानवता का नग्न नृत्य कहीं देखना है तो यही स्थान है और कहीं जाने की जरूरत नहीं है । शर्म, हया, इज्जत-आबरू नाम की चीज ही नहीं रह जाती है । छोटे-मोटे पियक्कड़ की बात क्या ? बड़े-बड़े पूंजीपति तथा जागीरें इन बोतलों के बन्द पानी की बाढ़ में बह गये ।

शराब में पड़े प्राणघातक द्रव पियक्कड़ के फेफड़ों को छलनी कर देते हैं, कुछ वर्षों के बाद पैर डगमगाने लगते हैं और हाथ कंपित होने लगते हैं, मस्तिष्क की मशीनरी जर्जर हो जाती है ।

ब्रिटिश शासन काल में हम लोगों ने शराब बन्दी के लिये बड़ी-बड़ी कुर्बानियां दी हैं । शराबखानों में धरना रखा गया, मोटरें ऊपर से निकाली गईं । धरना वालों को दूर फेंकवाया गया । मगर शराब की निकासी की गई

सरकार कहती थी कि यदि शराब बन्द हो जाएगी तो इसका धन जो सुम लोगों के शिक्षा पर व्यय किया जाता है वह रुक जाएगा। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार हमको दोहरा जहर देती थी।

35 वर्ष के अन्तराल में कानून द्वारा शराबबन्दी के मामले में अपेक्षित सफलता नहीं मिली है तथा कानून बनाने वाले लोग इस मकड़ी के जाले को शक्ति नहीं मानते। इसमें छोटे-मोटे कीड़े तो फंस जाते हैं मगर बड़े जन्तु इसको तोड़ देते हैं।

शिक्षक स्वयं ही एक महान राष्ट्रीय पार्टी है जो राजनीति की पवित्र गंगा बहाते हैं, राष्ट्र के संचालन हेतु कुशल कर्णधार बनाते हैं। इन कार्यों को सरकार आर्थिक तुला में नहीं तौल सकती क्योंकि इतनी गरिमा पूर्ण समाज सेवा है कि सरकार उसके बदले जितना भी धन दे, वह न्यूनतम ही है। मगर हमारे देश का दुर्भाग्य है कि आज समाज उन्हीं लोगों का आदर करता है जो अधिक वेतन पाते हैं। मगर हम को समाज की इस छुद्र विचारधारा से विचलित नहीं होना चाहिए और न हताश होना है। शिक्षक का स्थान राष्ट्र में सबसे उच्च कोटि का और गरिमापूर्ण है। शिक्षक समाज को इस बुराई से बचा सकता है। समाज में क्रांति का शंखनाद कर उसको चेतना प्रदान करता है।

मद्य निषेध के इस पुनीत कार्य में शिक्षक की भूमिका ही सर्वमान्य होगी। शासन अपनी शक्ति लगा चुका। सत्ता सत्य को जानने में सर्वदा असफल रहती है क्योंकि वह पार्टी का चश्मा लगाकर देखती है और इलाज करती है। यदि सत्ता द्वारा हर बुराई का निदान हो जाय तो फिर एक दिन ऐसा आएगा कि प्रशासक की जरूरत ही नहीं रह जाएगी। इसलिए शक्ति बुराई को आच्छादित कर देती है, इससे क्षणिक आराम मिल जाता है मगर वह रोग समाप्त नहीं होता।

विद्यालय एक छोटा सा संसार है, उसमें नाना प्रकार के स्वभाव के शिशु पढ़ने आते हैं। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि विद्यालय एक प्रयोगशाला है जहां पर शिक्षक बैठकर मनोवैज्ञानिक ढंग से बच्चों के स्वभाव तथा विचारों का अध्ययन कर उनका निराकरण करता है। कुछ महान पैदा होते हैं, कुछ महान बनाये जाते हैं और कुछ पर महानता लादी जाती है। शिक्षक का कार्य यह है कि जो महान पैदा होते हैं उनको उसी स्तर पर आसीन रखें और जो बनाये जा सकते हों उनके अन्दर गुण तथा विचार भर दे कि महानता की श्रेणी में आ जाएं।

बहुधा देखा जाता है कि बच्चे माता-पिता की नजर बचाकर किसी प्रभाव से प्रेरित होकर बीड़ी-सिगरेट पीने लगते हैं। तो इस बात पर विचार करना होगा, यह प्रारम्भिक बुराई बच्चे क्यों सीखते हैं। साधन कहां से मिलता है? इन कारणों की जानकारी से विदित होता है कि विद्यार्थी का घर और विद्यालय में निकटतम होते हुए भी दूरी बढ़ जाती है। अभिभावक को पैसा कमाने के कारण समय नहीं मिल पाता कि वह अपने बच्चे की दिनचर्या का निरीक्षण किया करें। विद्यार्थी विद्यालय के बहाने घर से चला आता है, रास्ते में लुक छिपकर धूम्रपान करता है, तो ऐसी हालात में शिक्षक और अभिभावक की दूरी समाप्त करने से बच्चे की गतिविधियों का पता लगता रहेगा। पाठशाला और बालक के घर के वातावरण को अनुकूल किया जाय जिससे बालक विद्यालय आए, विद्यालय को घर और घर को विद्यालय के समान समझे।

कहने का अर्थ यह है कि रोग का निदान डाक्टर द्वारा और बच्चे की बुराइयों का निदान मास्टर द्वारा सम्भव है। आज का बच्चा यदि बुरी बातों से रोका न गया तो वही बालक कल देश का युवा बनकर बीड़ी-सिगरेट की जगह आयु के हिसाब से शराब पियेगा। तब एक कठिन समस्या समाज और शासन के सामने खड़ी हो जाएगी। इसलिए शिक्षक शिशु को प्रारम्भ में ही इन बुराइयों से बचाता रहे तो आज शराब के बढ़ते चरण पर पूर्णतः नियंत्रण हो जाए। संरक्षक को शिक्षक से मिलने का समय ही नहीं मिल पाता। प्रारम्भिक और जूनियर हाई स्कूल के शिक्षक से संरक्षक मिलने में अपनी तौहीनी समझते हैं। एक बहुत बड़ा यह दोष समाज में पैदा हो गया है। इस तरह बालक अभिभावक और शिक्षक की देख-रेख के बाहर हो जाता है।

शिक्षक को विद्यार्थी के साथ-साथ उनके अभिभावकों के विचारों को बदलना पड़ेगा। अभिभावक की इतनी लापरवाही से राष्ट्र को बहुत बड़ा खतरा पैदा हो जाएगा। शिक्षक समाज की समस्त बुराइयों को दूर करने का साहस रखता है। शराब के बढ़ते हुए कदम को देखकर प्रारम्भिक रूप से विद्यार्थी को सुधारने का जो कार्य शिक्षक कर रहा है वह दायित्वपूर्ण है। इसी अवस्था से रोकथाम उचित है। रह गई वर्तमान स्थिति से निपटने और सुधारने की बात तो यह दायित्व अन्य लोग निभाएं। हम बीज को अपनी समझ में अंकुरित नहीं होने देंगे यदि हमारी सीमा से बाहर है तो मजबूरी है।

मुझे विश्वास है कि मद्यनिषेध में शिक्षक की भूमिका सराहनीय है। अध्यापक बालपन से ही बच्चों को बुरी आदतों से बचाकर समाज को स्वस्थ रखते हैं। यदि शिक्षक प्रारम्भिक रूप से बालकों की इतनी देख-रेख न करे तो शराब पीने वालों की संख्या 50 प्रतिशत हो जाएगी। अध्यापक के सचेत और कर्तव्यनिष्ठ होने के बावजूद शराब समाज के लिये एक बहुत बड़ी समस्या पैदा कर रही है। शिक्षक अपने दायित्व को निभा रहा है। इसी प्रकार सभी शिक्षक अपनी-अपनी सीमा तक जरूर नशे की बुरी आदतों से बच्चों को बचाते हैं। क्योंकि शिक्षक के हृदय में बाप का प्यार, माता की ममता दोनों रहती है। वह बच्चे को पथ भ्रष्ट होते कभी नहीं देखेगा।

राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ की भूमिका

श्री अमर नाथ पान्डेय,

प्रधान अध्यापक,

प्रा० पा० बागेश्वर,

जनपद--अल्मोड़ा ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारे देश में प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली को अपनाया गया, अतः अब सर्वसाधारण में शिक्षा प्रसार की पूर्व की अपेक्षा अधिक आवश्यकता ज्ञात होने लगी, प्रथम पंचवर्षीय योजना में प्रजातन्त्रीय शिक्षा के निम्न उद्देश्य बताये गये हैं--

"देशवासियों की सहयोग भावना व्यवस्थित नागरिक जीवन तथा आम जनता के सामाजिक कार्यों में बुद्धिमत्ता के साथ भाग लेने पर ही लोकतन्त्र राज्य की सफलता निर्भर है। इस कारण यह बहुत आवश्यक है कि--शिक्षा ऐसी हो कि--प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों को कर्त्तव्य से अधिक महत्व दे। और आलोचनात्मक प्रशंसा करने तथा ठीक तरह से सोचने-विचारने की आदत पड़ जाय।"

उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार करना आवश्यक है। यदि हमारा लक्ष्य ऊंचा है और अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के सहारे सामाजिक स्वतन्त्रता और आर्थिक लोकतंत्र के लक्ष्य तक पहुंचना चाहते हैं तो स्पष्टतः जन साधारण के लिए कहीं अधिक उच्चस्तर की शिक्षा की आवश्यकता होगी नहीं तो हमेशा इस बात का खतरा रहेगा कि--

"बेईमान दल का व्यक्ति अपने निकृष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस तथाकथित स्वतन्त्रता का अनुचित लाभ उठायेगा।"

प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ--

प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ साधारणतया निरक्षर व्यक्तियों को पढ़ना लिखना सिखाने से और शिक्षा प्रदान करने से है। प्रौढ़ शिक्षा में मोटेतौर पर वह सभी नियमित तथा अनियमित शिक्षा सम्मिलित है जो प्रौढ़ों को प्रदान की जाती है। भारत में प्रौढ़ शिक्षा के दो दृष्टिकोण हैं--

1--प्रौढ़ साक्षरता या उन प्रौढ़ों को शिक्षा देना जिन्होंने कभी निजी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त न की हो।

2--साक्षर प्रौढ़ों की अनवरत् शिक्षा, केन्द्रीय मन्त्रालय ने प्रौढ़ शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि--

"प्रौढ़ शिक्षा की किसी भी योजना का उद्देश्य है कि--वह पुरुषों और स्त्रियों को निर्णय और विचार की परिपक्वता प्रदान करे उनमें उत्तरदायित्व और जागरूकता की भावना का विकास करे और उनके जीवन में उपयुक्त सिद्धान्तों को विकसित करने का प्रयास करे, उनमें ऐसी रुचियों का विकास करे जिससे वे अपने अवकाश का पूर्ण उपयोग कर सकें।"

प्रौढ़ शिक्षा का नवीन रूप तथा समाज शिक्षा--

स्वतन्त्रता से पूर्व प्रौढ़ शिक्षा प्रसार का कार्य प्रारम्भ हो गया था परन्तु, उस युग में प्रौढ़ शिक्षा का तात्पर्य प्रौढ़ों को पढ़ना लिखना सिखाने तथा हस्ताक्षर करना सिखाना था परन्तु अब प्रौढ़ों को लिखना-पढ़ना सिखाना ही नहीं वरन् उनको ऐसी शिक्षा देना है जिससे वे प्रजातन्त्र के क्रियाशील व कुशल नागरिक बन सकें, केवल दो-चार अक्षर सीख लेने से ही नागरिकता का विकास नहीं हो सकता। अतः समाज शिक्षा में प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के साथ-साथ उनकी आत्मानुभूति को जागृत करना तथा नागरिकता की चेतना का विकास करना है, जिसमें हर आदमी को चेतनायुक्त नागरिक बनने और सांस्कृतिक समझदारी उत्पन्न करने की शिक्षा भी सम्मिलित की गयी है।

समाज शिक्षा का कार्यक्रम--

समाज शिक्षा के कार्यक्रम को निश्चित करने के लिए सरकार ने पांच सूत्रीय कार्यक्रम बनाया है जो इस प्रकार है--

1--साक्षरता का विकास।

2--सफाई व स्वास्थ्य के नियमों का ज्ञान करना।

3--प्रौढ़ व्यक्तियों के आर्थिक स्तर की उन्नति करना।

4--अधिकारों और नागरिकता के प्रति जनता को जाग्रत करना।

5--समाज के व्यक्तियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर मनोरंजन के साधनों की वृद्धि करना ।

समाज शिक्षा के उद्देश्य--

1--नागरिकों में समाज सेवा की भावना भरना तथा उन्हें अपने अधिकारों व कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक करना ।

2--प्रजातन्त्र के लिए उनमें स्नेह उत्पन्न करना तथा जनतन्त्रीय सरकार के स्वरूप की जानकारी ज्ञात करना ।

3--विश्व की जटिल समस्याओं का ज्ञान प्राप्त करना ।

4--इतिहास, भूगोल तथा सांस्कृतिक ज्ञान के माध्यम से संस्कृति की उच्च भावनाओं को विकसित करना ।

5--उनके जीवन में सहयोग की भावना उत्पन्न करना ।

6--सामाजिक स्वास्थ्य और व्यक्तिगत स्वास्थ्य के सामान्य नियमों का ज्ञान करना ।

7--अवकाश के समय में वे कुछ कर सकें इस कारण दस्तकारी का प्रशिक्षण देना ।

8--कविता, गायन, नाटक तथा सामूहिक नृत्यों द्वारा उनका सांस्कृतिक उन्नयन करना ।

9--सामूहिक वाद विवाद द्वारा उन्हें प्रमुख नैतिक मूल्यों का ज्ञान कराना ।

10--साधारण गणित तथा पढ़ने-लिखने का ज्ञान प्राप्त करना ।

11--पुस्तकालय, विवाद गोष्ठियों तथा जनता महाविद्यालयों के माध्यम से शिक्षाक्रम को बनाये रखना ।

प्रौढ़ शिक्षा की समस्याएं--

प्रौढ़ शिक्षा की निम्नलिखित समस्याएं हैं :--

1--निरक्षरता की समस्या--

देश के 68 करोड़ व्यक्तियों में कुछ ही व्यक्ति साक्षर हैं, इस प्रकार देश की अधिकांश जनता साक्षरता के महत्व को नहीं समझती है । उनमें शिक्षा प्रसार करना कठिन है ।

2--अध्यापकों की समस्या :--

प्रौढ़ों को शिक्षा प्रदान करने के लिए अध्यापकों का अभाव भी एक जटिल समस्या है । प्रौढ़ शिक्षा के लिए अनुपयोग्यता के अनुभवहीन अध्यापकों द्वारा काम नहीं चलाया जा सकता है क्योंकि प्रौढ़ों को शिक्षा प्रदान करने के लिए मनोविज्ञान का ज्ञाता होना आवश्यक है, प्रौढ़ का मानसिक स्तर एक बालक व किशोर से भिन्न है, अतः प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता पड़ती है ।

2--अध्यापकों की एक विशाल संख्या की आवश्यकता है, प्रौढ़ शिक्षा का काम राष्ट्रीय स्तर पर किया जा रहा है, उसके लिए अधिक से अधिक अध्यापकों की आवश्यकता है जिनकी पूर्ति करना कठिन है ।

3--गांव के नीरस तथा कठिन वातावरण में कोई शिक्षा प्रसार करने जाना पसन्द नहीं करता ।

3--पाठ्यक्रम की समस्या--

समाज शिक्षा के पाठ्यक्रम की समस्या भी कठिन है, शिक्षा शास्त्रियों में प्रौढ़ों के पाठ्यक्रम के विषय में विभिन्न मत हैं । परन्तु यह सत्य है जो पाठ्यक्रम बालकों के लिए निर्धारित किया उसे हम प्रौढ़ों के लिए प्रयोग में नहीं ला सकते, यदि हम पाठ्यक्रम में सामाजिक विषय जैसे--इतिहास, भूगोल तथा नागरिकशास्त्र आदि को रखते हैं, तो प्रौढ़ इन विषयों में कोई दिलचस्पी नहीं रखाते क्योंकि--वे इस प्रकार की शिक्षा को अनुपयोगी समझते हैं, दूसरी समस्या आयु के अनुसार पाठ्यक्रम निर्धारित करने की है, हमारे देश में प्रौढ़ों को 3 श्रेणियों में बांटा गया है--

1--12 वर्ष से 18 वर्ष तक ।

2--18 वर्ष से 35 वर्ष तक ।

3--35 वर्ष से ऊपर के प्रौढ़ ।

इन तीनों क्रम की आयु के प्रौढ़ों का मानसिक स्तर भी भिन्न-भिन्न होता है । अतः इन स्तरों पर पाठ्य-क्रम को निर्धारित करना कठिन है ।

4—शिक्षण प्रणाली की समस्या—

प्रौढ़ों के लिए कौन सी शिक्षण प्रणाली है, यह प्रश्न अत्यन्त जटिल है, बालकों का मानसिक विकास अधिक न होने के कारण, उनको हम सरलता से एक सी शिक्षण प्रणाली द्वारा शिक्षा प्रदान कर सकते हैं परन्तु प्रौढ़ों को पढ़ाना अत्यन्त दुष्कर है, वे जीवन के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण रखते हैं, उनकी इच्छा या भावना के प्रतिकूल यदि कुछ कहा गया या बताया गया तो उसे मानने को तैयार नहीं होंगे ऐसी दशा में यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि—किस प्रकार की शिक्षण प्रणाली का प्रयोग किया जाय ।

5—उपस्थिति की समस्या—

समाज शिक्षा के केन्द्रों में प्रौढ़ों की प्रायः अनुपस्थिति भी बनी रहती है, प्रौढ़ शिक्षा का जो कुछ भी प्रबन्ध इन केन्द्रों में किया जाता है वह प्रायः व्यर्थ हो जाता है । इस अनुपस्थिति का प्रमुख कारण प्रौढ़ शिक्षा का नीरस तथा अनाकर्षक होना है, दूसरे प्रौढ़ों को मुख्यतया गाँवों में काम इतना रहता है कि—उन्हें इन केन्द्रों में जाने का समय ही नहीं मिलता ।

6—साहित्य की समस्या—

समाज शिक्षा का तात्पर्य केवल प्रौढ़ों को पढ़ना-लिखना सिखाने से नहीं है वरन् उनमें नागरिकता की भावना भी भरनी है, प्रौढ़ लोगों के लिए सामाजिक तथा नागरिक शिक्षा का एक बुनियादी उद्देश्य यह होना चाहिए कि—आम लोगों की आलोचनात्मक दृष्टि पैनी बनायी जाय, ताकि वे अपना उल्लू सीधा करने वालों और समाज सेवकों में अन्तर कर सकें । परन्तु प्रश्न यह उठता है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कौन सा और कैसा साहित्य पढ़ाया जाय । प्रौढ़ों की तार्किक तथा आलोचनात्मक भावनाओं को विकसित करने के लिए नव साहित्य का निर्माण भी एक कठिन समस्या है ।

7—धन की समस्या—

हमारे देश में प्रौढ़ों की संख्या 18.5 करोड़ से अधिक है, स्पष्ट है कि—इतनी विशाल संख्या को साक्षर बनाने के लिए अपार धनराशि की आवश्यकता पड़ेगी जिसको जुटाना कठिन कार्य है, इतने निरक्षर व्यक्तियों को साक्षर बनाने के लिए अध्यापकों की भी एक बड़ी सी सेना रखनी होगी, वास्तव में धन का अभाव समाज शिक्षा के मार्ग में एक जटिल समस्या है ।

8—समाज सेवकों का अभाव—

समाज शिक्षा के प्रसार का कार्य केवल सरकार द्वारा ही नहीं किया जा सकता । सरकार अधिक से अधिक धन का आयोजन करती है, वास्तविक समाज सेवा क्षेत्र में सच्चे समाज सेवक या स्वयं सेवक ही कर सकते हैं, परन्तु हमारे देश में तो नेता असंख्य मिल जायेंगे पर जनता की सेवा करने वाले समाज सेवियों का अभाव बना रहेगा ।

9—उत्तरदायित्व की समस्या—

समाज शिक्षा का उत्तरदायित्व उठाये यह भी एक विचार करने की कठिन समस्या है, केन्द्रीय सरकार ने समाज शिक्षा का समस्त भार राज्य की सरकारों पर डाल दिया है, परन्तु केन्द्र का समाज-शिक्षा के उत्तरदायित्व से अपने को मुक्त करना कभी-कभी बाधा का काम करता है, तथा इस प्रकार की व्यवस्था में समाज शिक्षा की समस्या का कोई हल भी नहीं निकालता है ।

समस्याओं का समाधान—

ऊपर हमने बताया कि समाज शिक्षा के मार्ग में आने वाली समस्याओं का समाधान करना कोई सरल कार्य नहीं है । परन्तु फिर भी हमें निराश नहीं होना चाहिये । समाज शिक्षा के मार्ग में आने वाली बाधाओं का समाधान निम्न प्रकार किया जाना चाहिये :

1—निरक्षरता का निवारण—

करोड़ों की संख्या में निरक्षरों को साक्षर बनाना यद्यपि कोई सरल कार्य नहीं है परन्तु कुछ उपायों द्वारा किसी सीमा तक सफलता मिल सकती है । प्रौढ़ों को शिक्षा प्रदान करते समय उन्हें सरल से सरल साधनों द्वारा लिखने-पढ़ने की शिक्षा प्रदान की जाय ।

2—उपयुक्त पाठ्यक्रम—

प्रौढ़ों का पाठ्यक्रम उन्हें केवल साक्षर बनाने वाला न हो, उनका सर्वांगीण विकास करके राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक उत्थान कर सके । उनके पाठ्यक्रम में उन विषयों को सम्मिलित किया जाय जो उनसे सम्बन्धित हों । पाठ्यक्रम का आदर्श किसी ऐसे देश से भी लिया जा सकता है जिसकी स्थिति हमारे देश के समान हो । प्रौढ़ों के पाठ्यक्रम में प्रारम्भिक गणित, विज्ञान, ऐतिहासिक कहानियां, धार्मिक गाथायें आदि को सम्मिलित किया जाय । जहां तक सम्भव हो पाठ्यक्रम को रोचक तथा आकर्षक बनाया जाय । मनोरंजक कहानियां लोकगीत आदि को अवश्य रखा जाय । प्रौढ़ों को जटिल विषय पढ़ाने के बजाय उनको वे सम्बन्धित बातें बतायी जायं जिन्हें वे पहले से जानते हों । पशुपालन व कृषि शिक्षा को प्रथम स्थान दिया जाय ।

3—शिक्षण प्रणाली में सुधार—

प्रौढ़ों के लिये उपयुक्त शिक्षण प्रणाली का प्रयोग किया जाय । शिक्षण प्रणाली रोचक होने के साथ-साथ ऐसी हो कि वे उसके द्वारा शीघ्र से शीघ्र पढ़ना लिखना सीख सकें । प्रौढ़ों के लिये निम्न प्रणालियों का उपयोग किया जाता है :—

(अ) वर्ण परिचय प्रणाली (ब) वाक्य प्रणाली (स) लांबक प्रणाली (द) कहानी प्रणाली (य) सरस प्रणाली ।

4—अध्यापकों की समस्या का हल—

प्रौढ़ विद्यालयों में योग्य तथा प्रशिक्षित अध्यापकों को नियुक्त किया जाय । ग्रामीण विद्यालयों में नियुक्त किये जाने वाले अध्यापकों को कृषि, पशुपालन, हस्तकला तथा स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञान होना चाहिये । जब तक प्रशिक्षित अध्यापक न मिलें तब तक के लिये प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम को स्थगित नहीं किया जा सकता । अतः प्रौढ़ शिक्षा का कार्य निःस्वार्थ स्वयं सेवकों, शिक्षा संस्थाओं के अध्यापकों, छात्रों तथा समाज सेवकों द्वारा किया जा सकता है ।

5—शिक्षा के उचित साधन—

प्रौढ़ों को ज्ञान प्रदान करने के लिए उचित साधनों जैसे—लोकगीत, नाटक, काव्य, प्रहसन तथा गोष्ठियों आदि का प्रयोग करना चाहिये । रुचि उत्पन्न करने वाले रेडियो, ग्रामोफोन यथा उनके विचार को व्यापक करने के लिए शिक्षा में श्रव्य दृश्य साधनों का भी प्रयोग करना चाहिये जो विज्ञान ने हमें सौंपे हैं जैसे—चित्र, चार्ट, खाके, फिल्म, मैजिक-लैन्टर्न आदि ।

6—समाज शिक्षा केन्द्रों को आकर्षक बनाना—

यह बात भी ध्यान में रखने की है कि—यदि सामाजिक केन्द्र अनाकर्षक तथा नीरस वातावरण उत्पन्न करने वाले होंगे तो समाज शिक्षा का कार्यक्रम कभी भी सफल नहीं होगा ।

यदि प्रौढ़ शिक्षा को राष्ट्रीय जीवन के पुनरुत्थान में अपनी उचित भूमिका निभानी है तो इन केन्द्रों को गति-वान बनाना होगा, जो स्थानीय समाज के वास्तविक तथा निहित साधनों को एक स्थान पर केन्द्रित करें और एक ऐसा परिवेश तथा वातावरण उत्पन्न करें जिसमें इस रुचि को विकसित करते हुए प्रौढ़ शिक्षा राष्ट्रीय विकास में अपनी उचित भूमिका का निर्वाह कर सके ।

विद्यालयों में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे ?

श्री शिवमूर्ति सिंह,
प्रधानाध्यापक,
प्रा० वि०, घोसिया, क्षेत्र औराई,
जनपद--वाराणसी ।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है । यद्यपि पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े भी चेतन प्राणी हैं, परन्तु उनमें सामाजिकता की भावना नहीं है । ईश्वर प्रदत्त बुद्धि उन्हें भी मिली है पर काम चलाऊ । यदि मनुष्य के समान उनमें भी बौद्धिक क्षमता होती तो सभी प्राणी मनुष्य की ही भांति सम्भवतः असम्भव कार्य-कलापों की ओर अग्रसर रहते । यही कारण है कि मानव, सृष्टि का अनुपम उपहार तथा रचयिता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है । मानव जन्म शायद इसीलिये है कि उसके द्वारा लौकिक तथा पारलौकिक उत्थान ही जीवन का मूल उद्देश्य है ।

सामाजिक उत्थान हेतु अनादिकाल से ही विद्यालयों की आवश्यकता आंकी गई एवं विद्यालयों का उद्भव हुआ । समय की आवश्यकता, युग की गतिविधिवों के कारण विद्यालयों की शिक्षा-दीक्षा एवं रहन-सहन में परिवर्तन होते रहे । इसी भांति शिक्षा के उद्देश्य भी परिवर्तित होते गए । प्रत्येक युग में अपने-अपने ढंग के विद्यालय रहे हैं जो उस युग की आवश्यकता की पूर्ति करते रहे हैं ।

जहां तक नैतिकता का प्रश्न है, इसकी आवश्यकता सदैव थी और भविष्य में भी रहेगी । पौराणिक युग का गुरु साक्षात् भगवान माना जाता था । कपिल, कणाद, वशिष्ठ नैतिकता की सीमा रहे । उन्हें मानवेत्तर गुणों की खान समझा जाता था । फलस्वरूप लोग उनके चरणों की धूल मस्तक पर चढ़ाकर अपने को धन्य मानते थे । गुरु ही समाज का ज्वलन्त प्रतिबिम्ब था । राजा-रंक, धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित सभी तो गुरु का साक्षात्कार होने पर श्रद्धा से नतमस्तक होते थे । आखिर क्यों ? केवल इसीलिये कि गुरु ही मानवता एवं नैतिकता की प्रतिमूर्ति था । प्रश्न उठता है कि नैतिकता क्या है ?

नीति शब्द से नैतिक एवं नैतिक से नैतिकता शब्द बना । नैतिकता के अर्थ हैं, धार्मिक मर्यादा । धार्मिकता का अर्थ संकुचित दृष्टिकोण नहीं अपितु सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय । जिस नीति के आचरण से अपना, समाज का, राष्ट्र का, विश्व का अर्थात् प्राणिमात्र का कल्याण हो वही नैतिकता है । नैतिक धर्माचरण में संकुचित दृष्टिकोण को स्थान नहीं है । समुचित सदाचरण ही नैतिकता है । नैतिकता वह मर्यादा है जो लोक-जीवन में मनुष्य को पूर्ण मानव बनाती है । जिसका सम्बल एवं आवरण सांसारिक विपदाओं से मनुष्य की रक्षा करता है । जीवन की भौतिक शिक्षायें कलायें छात्रों को दे दी जायं तो क्या नैतिक शिक्षा के अभाव में उक्त शिक्षा अधूरी नहीं रह जायेगी ? बालक को मानसिक और शारीरिक तथा अर्थ, लाभ हेतु भौतिक शिक्षायें निःसंदेह आधार बनती हैं, परन्तु नैतिक शिक्षा के अभाव में मनुष्य, मनुष्य ही नहीं रह जाता फिर उक्त शिक्षा से क्या लाभ ? अतएव लोक कल्याण, उच्च कोटि के सामाजिक निर्माण तथा मानवता को देवत्व में परिणत करने हेतु नैतिक शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है ।

संसार में एक से एक विद्वान, धनवान हैं, किन्तु आज के युग में चरित्रवानों का अत्यन्त अभाव सा हो गया है । उसकी पूर्ति हेतु नैतिक शिक्षा की आवश्यकता, आज के लोग महसूस कर रहे हैं ।

प्राचीन काल के आश्रम पद्धति विद्यालय, चरित्र निर्माण के केन्द्र रहे हैं । छात्र, उन आश्रमों से पूर्ण मानव बनकर बाहर आते थे । आश्रम पद्धति के विद्यालय, भौतिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार की छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे ।

गीता में श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कहा था कि सभी विद्याओं में आध्यात्मिक शिक्षा ही सर्वोत्कृष्ट है सच पूछा जाय तो अध्यात्म ही नैतिकता का असीम भंडार है । नैतिकता ही आध्यात्मिकता है । अतः निःसंकोच कहा जा सकता है कि विद्यालयीन शिक्षा में नैतिक शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है । इस शिक्षा के अभाव ने देश के चरित्र को बहुत नीचे गिराया है । एक विचारवान का मत है कि शिक्षा में नैतिकता ही आधार शिला है, जिस पर भौतिकता के अनुपम एवं आदर्श प्रासाद का निर्माण किया जाता है । जिस देश के छात्र जितने ही चरित्रवान होते हैं उसकी उतनी ही उन्नति होती है । असत्य, हिंसा, स्वार्थपरता, निर्दयता, शोषण तथा विश्वासघात का सम्बल लेकर विश्व के अनेक राष्ट्र भौतिक सुख की दृष्टि से पर्याप्त सम्पन्न हैं । अर्थात् नैतिकता के अभाव में भी वे भौतिक दृष्टि से धनी एवं प्रभावशाली हैं । उनकी सम्पन्नता कुछ अंशों में भौतिक दृष्टि से सही भी है, किन्तु क्या राष्ट्र का चरित्र उत्तम है ? कदापि नहीं । क्या दानवी प्रवृत्तियों से व्यापारिक सफलता प्राप्तकर, सांसारिक सुख-सुविधाओं को हस्तगत करने वाला मनुष्य, अथवा राष्ट्र, मानव या चरित्र सम्पन्न राष्ट्र कहा जा सकता है ? सच तो यह है कि भौतिक सुविधायें प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य तो नहीं है । हां, जीवन यापन का लक्ष्य हो सकता है ।

छात्र, शिक्षक, अभिभावक और राष्ट्र सभी तो वर्तमान शिक्षा से असन्तुष्ट हैं । आज का समाज अराजकता की चरम सीमा पर है । उसी समाज से शिक्षक विद्यालयों में शिक्षण जैसे पुनीत कार्य करने आता है । शिक्षार्थी भी उसी समाज की देन है । अब विचार करें कि ऐसे शिक्षक और शिक्षार्थी से क्या आशा की जाय ?

आज के भारतीय छात्रों की दशा तो अत्यन्त शोचनीय है। सत्य, अनुशासन, यम, संयम, नियमन, त्याग, बलिदान, दया, अहिंसा का उनमें सर्वथा अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका मस्तिष्क विस्फोटक पदार्थ से बना है। स्वार्थ हिंसा, अनैतिकता, गुरु के प्रति अश्रद्धा जैसे अमोघ अस्त्र से ही परीक्षा उत्तीर्ण करना चाहता है। ऐसी स्थिति में विद्या जैसे अमृत रस का रसास्वादन तो दूर रहा, उसका आवारिक ज्ञान प्राप्त करना भी छात्र के लिए असम्भव हो गया। प्रारम्भिक स्तर से लेकर उच्चविश्वविद्यालय शिक्षा के छात्र तक अपनी शक्ति, तथा अविवेक के बल पर हलचल कर रहे हैं। उनके अनैतिक आचरण से सर्वत्र भय, निराशा, अरक्षा में गुणात्मक वृद्धि हो रही है। जब विद्यार्थी द्वारा स्वयं आदरणीय गुरुओं को अपमानित होना पड़ रहा है, तो देश का क्या होगा? राष्ट्र किधर जा रहा है? देश का भविष्य किनके हाथों जायगा? यह सोचकर हर विचारवान और राष्ट्रप्रेमी की आत्मा कांप जाती है।

प्रश्न उठता है कि छात्रों को विद्यालय में नैतिक शिक्षा कैसे दी जाय? वास्तव में इस सम्बन्ध में गहन विचार की आवश्यकता है। नैतिक शिक्षा के अभाव के कारण ही देश में चोरी, डकैती, हिंसा, विस्फोट का सागर उमड़ कर मर्यादा भंग कर रहा है। सारांश यह कि हर क्षेत्र में काम चलाऊ विद्वान भारी संख्या में बढ़ रहे हैं। ज्ञानी, पूर्णज्ञानी, वैज्ञानिक लोगों की दुनिया जो अतीत में रही, आज के इस युग में केवल कथा-कहानियों में ही सुनने को मिलती है।

आज का छात्र अपनी परिस्थिति के अनुसार रुचि को प्राथमिकता देता है। प्राचीन काल में छात्र 25 वर्ष तक की आयु तक गुरुकुल में रहता था। आश्रम के छात्र लगभग समान रूप से विद्वान, चरित्रवान तथा देश व समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी होते थे। उन्हें हर प्रकार से सर्वगुणी बनाकर ही गृहस्थ-जीवन में प्रवेश मिलता था। इस प्रकार तत्कालीन गुरुकुलों की महत्ता भलीभांति समझी जा सकती है।

अब प्रश्न उठता है कि विद्यालयों में छात्रों को किस प्रकार नैतिक शिक्षा दी जाय। मन तथा बुद्धि को अभ्यास एवं नियमन से ही वश में किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार नैतिक शिक्षा भी दी जा सकती है। साधना, अभ्यास उत्तम वातावरण अभिभावक की दिनचर्या, गुरुओं का आदर्श व हित और विद्यालयों का विशुद्ध नैतिक परिप्रेक्ष्य ही वास्तविक नैतिक शिक्षा के मूलाधार हैं। असम्भव तो नहीं है परन्तु छात्रों को उत्तम आचरण में ढालना वर्तमान वातावरण में टेढ़ी खीर अवश्य है। वास्तव में चरित्र का सम्बन्ध मन, बुद्धि तथा हृदय से है। इन तीनों के द्वारा ही नैतिक शिक्षा दी जा सकती है।

आज नैतिक शिक्षा पर पर्याप्त चर्चा चल पड़ी। किन्तु यह शिक्षा वर्तमान सामाजिक और विद्यालयी परिवेश में कैसे दी जाय, इस पर कोई निश्चित सिद्धान्त और अकाट्य पद्धति बनाना निस्संदेह कठिन है। विद्यालयों का वर्तमान ढांचा परिवर्तित करना, उनसे बुराइयों को दूर करना तथा भावी आवश्यकता के अनुरूप बनाना, एक कठिन कार्य है। इस सन्दर्भ में हमारे गुरुओं का आचरण प्रमुख भूमिका निभा सकता है।

यों तो यह कहना भी समीचीन होगा कि अभी हमारे विद्यालयों में आदर्श गुरु हैं किन्तु उनकी संख्या नगण्य होती जा रही है। कारण? केवल भौतिक आवश्यकतायें हैं। इन वर्तमान शिक्षकों को आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयों से मुक्त कर दिया जाय तो कोई कारण नहीं कि हमारे विद्यालयों के शिक्षक एक आदर्श शिक्षक की भूमिका न निभा सकें। इस प्रकार कालान्तर में हमारे राष्ट्र का चारित्रिक उत्थान होगा और नैतिकता का व्यापक प्रसार होगा।

पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा का समावेश और उस पर पर्याप्त बल देना आवश्यक है। छात्रों के प्राप्तांक में नैतिक प्राप्तांक विशेष महत्वपूर्ण और मूल्यवान होना चाहिए। सरकारी नौकरियों में शैक्षणिक योग्यता के साथ यदि नैतिक मूल्यों को विशेष महत्व दिया जाय तो निश्चित रूप से छात्रों में एवं समाज में नैतिकता के प्रति आकर्षण बढ़ेगा और वास्तविक नैतिक शिक्षा का आधार तैयार हो जायगा। जब तक देश और सामाजिक क्षेत्र में नैतिक मूल्यों का वास्तविक आकलन नहीं होगा, एक सच्चे गुरु के लिए भी नैतिक शिक्षा प्रदान करना असम्भव है।

वैसे छात्र के लिए नैतिक शिक्षा तो गुरु का सदाचरण ही है। ऐसी पुस्तकें जिनमें महर्षियों, महात्माओं, चरित्रवानों तथा राष्ट्रप्रेमी व्यक्तियों की गाथायें हों, प्रकाशित की जायं एवं पाठ्यक्रम में निर्धारित की जायं। गुरुओं का आचरण तदनुरूप हो तथा प्रोन्नति में इन मूल्यों का विशेष स्थान हो। इस शिक्षा में चलचित्रों की सहायता भी ली जा सकती है।

इस प्रकार गुरुओं की निर्विवाद भूमिका, सामाजिक ढांचा, समुचित पाठ्यपुस्तकों का पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना तथा ईमानदारी से नैतिकता का मूल्यांकन करके नैतिक शिक्षा के क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की जा सकती है तथा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का उत्थान किया जा सकता है। इति।

राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका

श्री शिवनाथ त्रिपाठी, प्रधानाध्यापक,
प्राथमिक विद्यालय, रामनगर, कल्यानपुर, कानपुर

1—प्रस्तावना—

बिना पढ़े नर पशु कहावे ।
सदा सैकड़ों दुख उठावे ।।

की उक्ति केवल बालकों के लिए ही शिक्षा के महत्व का प्रतिपादन नहीं करती अपितु मानव मात्र को विद्याध्ययन के लिए प्रेरित करती है । वास्तव में जीवन का कोई ऐसा समय और क्षेत्र नहीं, जहां शिक्षा की आवश्यकता न पड़ती हो । नित्यप्रति के व्यवहार में सुबह से लेकर शाम तक हर समय और हर स्थान पर शिक्षा का महत्व दिखाई देता है । विभिन्न कार्यालयों में, व्यापार में, नौकरी में, उद्योगों में, कृषि में और तो और मनोरंजन के साधनों में भी शिक्षित व्यक्ति अशिक्षितों की अपेक्षा बहुत आगे रहते हैं ।

2—प्रौढ़ों के लिए शिक्षा की आवश्यकता—

दुर्भाग्य का विषय है कि हमारे देश में अब तक नगरवासियों, नौकरी करने वालों तथा विशिष्ट व्यक्तियों के लिए ही शिक्षा का अधिकार सुरक्षित माना जाता रहा है । बहुत से ग्रामीण 'हमारा लड़का क्या तोता मैना है जो पढ़ेगा' कह कर शिक्षा का उपहास करते हुए सुने जाते हैं । बहुत से लोग केवल बाल्यकाल को ही शिक्षा ग्रहण करने का समय मानते हैं पर यह ठीक नहीं है । हमारे यहां 'यावज्जीवम धीते विप्रः' (विप्र जीवन भर अध्ययन करता है) कह कर सम्पूर्ण जीवन को ही अध्ययन का काल माना है । बालक हो, नौजवान या वृद्ध हो—सबको शिक्षा की समान रूप से महती आवश्यकता है । यदि हम गंभीरता से विचार करें तो ज्ञात होगा कि जीवन संग्राम में प्रवेश करते ही शिक्षा की सर्वाधिक आवश्यकता पड़ती है । जीवन संग्राम यह प्रवेश युवावस्था के प्रारम्भ में होता है जो प्रौढ़ावस्था कही जाती है । अतः प्रौढ़ों के लिए शिक्षा की सर्वाधिक आवश्यकता होती है । यदि इस पर निष्पक्ष रूप से विचार करें तो ज्ञात होगा कि समाज के प्रत्येक वर्ग के प्रौढ़ों के लिए शिक्षा की महान आवश्यकता है ।

(अ) मजदूरों के लिए शिक्षा की आवश्यकता—

मजदूरों के लिए भी शिक्षा की आवश्यकता है आज प्रत्येक उद्योग में नित्यप्रति तरह-तरह के विवाद उठते रहते हैं । इनका मूल कारण उद्योगपतियों की स्वार्थपूर्ण नीति राजनीतिक नेताओं द्वारा मालिकों और मजदूरों को गुमराह करके राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति, कानूनी पेचीदगियां आदि हैं । इनसे मालिकों और मजदूरों की हानि के साथ-साथ उत्पादन में कमी होने के कारण राष्ट्र हित की भी हानि होती है । एक शिक्षित मजदूर इन सब बातों को भली-भांति समझकर अपने हितों की रक्षा के लिए उचित समय पर जोरदार मांग कर सकता है ।

(ब) कृषकों के लिए शिक्षा की आवश्यकता—

आज के वैज्ञानिक युग में कृषि के क्षेत्र में नित्य प्रति नये-नये आविष्कार हो रहे हैं और उर्वरकों बीजों, कीटनाशक औषधियों आदि के अनेक उन्नत रूप हमारे सामने आ रहे हैं । इसके पूर्ण ज्ञान और प्रयोग का विवरण विभिन्न पत्रों तथा पुस्तकों में प्रकाशित होता रहता है । अतः एक शिक्षित कृषक ही इनसे पूर्ण लाभ उठा सकता है । बैंकों, ग्राम पंचायतों, सहकारी समितियों आदि से भी किसान का नित्य प्रति काम पड़ता है । इनसे पूर्ण लाभ उठाने तथा इनके कर्मचारियों द्वारा की जाने वाली धोखेधड़ी से बचने के लिए भी शिक्षा की परम आवश्यकता है ।

(स) व्यापारियों के लिए शिक्षा की आवश्यकता—

विभिन्न प्रकार के व्यापारिक कानूनों, बैंकों से प्राप्त होने वाली सुविधाओं, विभिन्न व्यापारिक मंडियों के नियमों, हिसाब-किताब के रखरखाव के लिए आज के व्यापारी को अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ता है, जिसके लिए उनका शिक्षित होना परमावश्यक है ।

(द) सामान्य व्यक्ति के लिए शिक्षा की आवश्यकता—

बहुत कहने से क्या, आज के प्रगतिशील युग में प्रत्येक वर्ग को शिक्षा की जितनी आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं रही । स्वास्थ्य रक्षा के लिए, विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों से पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए, सरकार से मिलने वाली अनेक प्रकार की सुविधाओं से पूर्ण लाभ उठाने के लिए, आत्मरक्षा के लिए, अपने अधिकारों और कर्तव्यों के ज्ञान के लिए एक सामान्य मनुष्य का शिक्षित होना अनिवार्य है ।

3—प्रौढ़ शिक्षा के विरोधियों के तर्क और उनके उनके उत्तर—

प्रौढ़ शिक्षा के विरोधियों का प्रधान तर्क यह है कि यह लोग थोड़े ही समय में काल कवलित हो जायेंगे । अतः जब तक हम इन्हें शिक्षित कर पायेंगे, इनका जीवन ही समाप्त हो जायेगा अतः इसमें धन, शक्ति और समय का व्यय करना व्यर्थ है । इसके उत्तर में निवेदन है कि प्रौढ़ शिक्षा का स्वरूप सामान्य शिक्षा से भिन्न होगा । उनके लिए

अधिक समय की आवश्यकता न होगी और उसमें होने वाला व्यय भी राष्ट्रीय व्यय का एक बहुत छोटा भाग होगा। हम इसमें जितना व्यय करेंगे उससे जन साधारण के माध्यम से राष्ट्रीय आय में कई गुनी अधिक वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त देश में सुविधाहीन प्रौढ़ों की संख्या इतनी अधिक है कि उनके असीमित होने से सम्पूर्ण देश के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। यदि हम इनके काल कवलित होने की प्रतीक्षा करते रहेंगे, तो देश विकास के क्षेत्र में कम से कम पच्चीस-तीस वर्ष पिछड़ जायगा और इस पिछड़ेपन को पूरा करने में बहुत समय लग जायगा। बहुत से लोग प्रौढ़ शिक्षा का विरोध करते हुए हंसी करते हैं कि "बुड्ढे तोते क्या राम राम पढ़ेंगे?" इन लोगों से नम्र निवेदन है कि इन बुड्ढे लोगों के पास अनुभव का ऐसा अक्षय भंडार है कि ये थोड़े से प्रयत्न से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। तीसरे इन लोगों की अपेक्षाओं का स्वरूप भी जन सामान्य की शिक्षा से भिन्न है, जो थोड़े समय में अल्प परिश्रम से जाना जा सकता है।

4--प्रौढ़ शिक्षा का स्वरूप--

प्रौढ़ों की शिक्षा का स्वरूप उनकी आवश्यकता के अनुरूप होगा। इसमें अक्षर ज्ञान के अतिरिक्त समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य-रक्षा, नैतिकता आदि का केवल सामान्य ज्ञान ही सम्मिलित किया जायगा। इसमें विषयों के गंभीर और विशाल अध्ययन का स्थान नहीं होगा। यदि किसी व्यक्ति की किसी विशेष विषय में रुचि होगी, तो वह आगे चलकर स्वयं ही उसका ज्ञान प्राप्त कर सकेगा।

प्रौढ़ों को यह शिक्षा उनकी सुविधा के अनुसार ऐसे समय में दी जायेगी जब उनके पास करने के लिए कोई भी काम नहीं होगा। प्रौढ़ों की शिक्षा सरकारी संस्थाओं के द्वारा न देकर स्वयंसेवी संस्थाओं के द्वारा दिलाने का प्रबन्ध किया जायगा, जहां स्वयंसेवी संस्थाएं उपलब्ध न होंगी, वहां सरकार इसका प्रबन्ध करेगी।

5--सरकार के प्रयत्न--

सरकार ने प्रौढ़ शिक्षा के महत्व का अनुभव करके इस कार्यक्रम को कई वर्षों तक चलाया था। उस समय प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति से दो-दो अशिक्षित प्रौढ़ों को शिक्षित करने का अभियान चलाया था। बाद में सरकार ने इस कार्य के लिए दो अरब रुपया व्यय करने का निश्चय किया तथा आवश्यकता होने पर इस व्यय में बढ़ोत्तरी करने का भी विचार किया। उसने इसे स्वयंसेवी संस्थाओं तथा जनप्रिय कार्यकर्ताओं द्वारा चलाने का प्रस्ताव रखा। इसके लिए विभिन्न प्रकार की योजनाएं तथा कार्यक्रम की रूपरेखा पर विचार-विमर्श किया।

7--उपसंहार--

जन सामान्य के उत्साह को देखकर हमें विश्वास होता है कि यदि सरकार का प्रयास ऐसा ही रहा तो यह योजना पूर्ण रूप से सफल होगी और सम्पूर्ण राष्ट्र शिक्षित होकर उन्नति की ओर द्रुतगति से चल पड़ेगा।

जनसंख्या वृद्धि और घटती सुविधाएं

श्री नाथू राम तिवारी,

प्रधानाध्यापक, प्राथमिक विद्यालय,

बिमाली चौड़, पिथौरागढ़ ।

विश्व की जनसंख्या का 56 प्रतिशत भाग एशिया के देशों में निवास करता है । इन एशियाई देशों में चीन एवं भारत दो ऐसे देश हैं जहां एशिया की कुल जनसंख्या का लगभग 35 प्रतिशत भाग पाया जाता है । इन देशों की जनसंख्या वृद्धि दर विकसित देशों की अपेक्षा ऊंची है । भारत की जनसंख्या वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष, चीन की वृद्धि दर 1.7 प्रतिशत प्रति वर्ष की तुलना में अधिक है, अनुमान लगाया गया है कि विश्व की जनसंख्या, जो इस समय लगभग 400 करोड़ है, वर्ष 2001 तक 650 करोड़ के लगभग हो जायेगी । इस बढ़ती हुई जनसंख्या की प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे की जा सकेगी, यह एक गम्भीर प्रश्न है । जनसंख्या के आधार पर भारतवर्ष का विश्व के परिप्रेक्ष्य में दूसरा स्थान है ।

जनसंख्या को देश के संसाधनों के अनुपात में रखने का ही दूसरा नाम जनसंख्या नियोजन है । जनसंख्या नियोजन के कार्य में तभी प्रगति हो सकती है जब देश के सभी दम्पति अपने परिवारों को नियोजित करें ।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों पश्चात्, अर्थात् 1951 से ही जनसंख्या वृद्धि में कमी लाने के उद्देश्य से परिवार नियोजन कार्यक्रम चलाया जा रहा है । हमारी सरकार इस कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर से चला रही है । प्रारम्भ में परिवार नियोजन कार्यक्रम पर होने वाला व्यय कम था जो कि तृतीय पंचवर्षीय योजना से क्रमशः बढ़ता चला जा रहा है और इस कार्यक्रम को आवश्यक प्राथमिकता प्रदान की गई है ।

वर्ष 1976 से भारत सरकार ने एक व्यापक जनसंख्या नीति की घोषणा की है, यह नीति देश से गरीबी हटाने एवं देश के बहुमुखी विकास के उद्देश्य से बनायी गयी है । जनसंख्या शिक्षा वह शिक्षा है जिसमें वर्तमान जनसंख्या स्थिति, देश के आर्थिक विकास पर बढ़ती हुई जनसंख्या का प्रभाव तथा जनसंख्या नियंत्रण के तरीकों के बारे में जानकारी करायी जाय ।

किसी भी देश की जनसंख्या वृद्धि निम्नांकित बातों पर आधारित होती है :—

(अ) जन्म-दर—प्रतिवर्ष जितने बच्चों का जन्म प्रति 1,000 (एक हजार) जनसंख्या पर होता है उसे जन्म-दर कहते हैं ।

(ब) देश में होने वाली प्रति 1,000 (एक हजार) जनसंख्या पर मृत्यु की संख्या मृत्यु-दर कहलाती है ।

तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण—

कुछ देशों में जनसंख्या वृद्धि की गति तीव्र होती है जबकि दूसरे देश में जनसंख्या वृद्धि सामान्य होती है । साधारण भाषा में यदि जन्म-दर कम है तो वृद्धि दर भी कम होगी और दूसरी ओर यदि जन्म-दर अधिक है और मृत्यु-दर भी अधिक है तब भी जनसंख्या में होने वाली वृद्धि असाधारण नहीं होगी । परन्तु यदि जन्म-दर ऊंची है और मृत्यु-दर कम है तो आने वाली जनसंख्या में विशाल अन्तर के फलस्वरूप जनसंख्या में होने वाली वृद्धि असाधारण होगी और वास्तव में यह स्थिति भयावह होती है ।

इसके अतिरिक्त विवाह के प्रति जनता की मनोवृत्ति एवं लड़कियों के विवाह की आयु जैसे तथ्य भी जनसंख्या वृद्धि को कम अथवा अधिक करने में प्रभाव डालते हैं । यदि लड़कियों का विवाह छोटी आयु में होता है तो प्रजनन दर एवं जन्म-दर दोनों ही ऊंचे होंगे ।

जनसंख्या के इतिहास को देखने से पता चलता है कि भारत में वृद्धि दर पिछले कई दशकों से बढ़ती आ रही है । इसका कारण स्पष्ट है कि हमारे देश में जन्म-दर और मृत्यु-दर में विशाल अन्तर है । प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों है ? गहराई से देखें तो पता चलता है कि चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्रों में अत्यधिक विकास हुआ है जिससे देश में बहुधा पड़ने वाली महामारियों का प्रायः उन्मूलन हो गया है और मृत्यु-दर में भारी कमी आई है । परन्तु जन्म-दर में अभी कमी नहीं आ पाई है ।

हमारे देश में जन्म-दर ऊंची होने के कई कारण हैं :—

(1) विवाह की सर्वव्यापकता एवं लड़कियों की छोटी आयु में विवाह ।

(2) प्रजनन की लम्बी अवधि ।

(3) बच्चे पैदा होने की तीव्र गति, जनसंख्या एवं विकास ।

जनसंख्या एवं देश में आर्थिक विकास स्तर का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि जनसंख्या को पर्याप्त मात्रा में जीवन की सुविधाएं उपलब्ध हैं तो उस देश को विकसित देश की संज्ञा दी जाती है। दूसरी ओर यदि जनसंख्या प्रतिदिन प्रयोग में आने वाली आवश्यक वस्तुओं से वंचित है अथवा उसे बहुत कम मात्रा में उपलब्ध है तो देश की आर्थिक दशा गम्भीर कही जायेगी। आर्थिक विकास के अन्तर्गत देश की राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, रहन-सहन का स्तर, उत्पादन की दशा, रोजगार व्यवस्था आदि शामिल हैं। अतः यदि राष्ट्रीय आय अधिक होती है तो प्रत्येक व्यक्ति को जीवन निर्वाह के लिये पर्याप्त धन मिलता है, जनता का रहन-सहन का स्तर उन्नत होता है, अर्थात् भोजन, कपड़ा और मकान जीवन की तीन आवश्यकताओं के साथ ही साथ आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुएं भी प्राप्त होती हैं। कार्यशील जनसंख्या के लिये रोजगार की उचित व्यवस्था होती है तो वह देश विकसित देश कहलाता है।

विकासशील देशों की कुल राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय विकसित देशों की तुलना में कम होती है। इसका मुख्य कारण उद्योग धन्धों की कमी तथा पूर्णतया विकसित न होना है, इसके अतिरिक्त कुल जनसंख्या में कार्य करने योग्य जनसंख्या का अनुपात भी प्रति व्यक्ति आय कम रखने के लिये कारक है। रोजगार के दृष्टिकोण से विकासशील देश मुख्यतः कृषि प्रधान होते हैं। आय कम होने से कृषि में प्रयोग आने वाले आधुनिक यंत्रों का प्रयोग नहीं कर पाते, दूसरी ओर जनसंख्या में वृद्धि तीव्र गति से होने के कारण भूमि परिवार के सदस्यों में बटते रहने के कारण जोत छोटी होती चली जाती है। जिससे प्रति एकड़ भूमि पर होने वाला उत्पादन विकसित देशों की तुलना में कम होता है।

जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास के लिये अभिशाप है, जनसंख्या का अधिक होना विकासशील देशों के लिये हानिकारक है। भूमि, साधन के सीमित होने के कारण, ज्यों-ज्यों मानवशक्ति बढ़ती जायेगी प्रति इकाई प्राप्त होने वाला उत्पादन कम होता जायेगा, खानेवालों की संख्या अधिक होने से देश को खाद्य समस्या का सामना करना पड़ेगा, कार्य करने वाले व्यक्तियों का बाहुल्य होने से बेरोजगारी फैलेगी। देश के पास इतना धन अथवा पूंजी नहीं होगी कि वह जनसंख्या में होने वाली वृद्धि के अनुपात में विनियोग में वृद्धि कर सके। राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं के समान हो पायेगी, जिसका प्रभाव प्रति व्यक्ति आय पर भी पड़ेगा, इसके अतिरिक्त जन शक्ति अधिक होने से खाद्य पदार्थों एवं अन्य उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में आनुपातिक वृद्धि न होने से पूर्ति कम होगी, फलतः वस्तुओं के मूल्य ऊंचे होने लगेंगे। मुद्रा-स्फीति पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा। साधारण शब्दों में जनसंख्या वृद्धि उन देशों के लिये जो अविकसित एवं विकासशील देशों की श्रेणी में आते हैं, घातक है। हमारे आर्थिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण जनसंख्या की अधिकता है। अतः जनसंख्या नियंत्रण आवश्यक है। बढ़ती हुई जनसंख्या और सीमित साधनों में समन्वय स्थापित करने के लिये यह आवश्यक है कि जनसंख्या पर नियंत्रण किया जाय। इसके लिये जन-संख्या-शिक्षा आवश्यक है। जनसंख्या शिक्षा वह शिक्षा है जो व्यक्ति को देश की कुल जनसंख्या एवं जनसंख्या की विशेषताओं की जानकारी दे।

विद्यालयों में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे ?

श्रीमती कृष्णा अवस्थी,
प्रधानाध्यापिका,
प्राथमिक कन्या पाठशाला,
ऊंचामंडी, इलाहाबाद।

शिक्षा मानव का आभूषण है। इसका मानव जीवन में एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। अशिक्षित मानव और पशु में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं रह जाता है। महान नीति शास्त्री चाणक्य ने कहा है:

"माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये, हंस मध्येबको यथा॥"

शिक्षा का वास्तविक अर्थ है "सांस्कृतिक मूल्यों के अनेक लाभ पाने वाले मानव की आवश्यक सुप्त शक्तियों के उद्दीप्त करने वाली मानसिक प्रक्रिया" एक ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति या बालक का बौद्धिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं अध्यात्मिक विकास होता है। "महात्मा गांधी" ने कहा था कि शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य बालक का सर्वांगीण यानी शारीरिक, मानसिक एवं अध्यात्मिक गुणों का विकास करना।

इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य है मानव के आंतरिक और शारीरिक सौन्दर्य का सम्पूर्ण विकास करना तथा उसे एक नागरिक बनाना, इसके लिये यह परम आवश्यक है कि छात्रों में नैतिक गुणों का विकसित किया जाय। स्वामी विवेकानंद ने कहा था "हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र निर्माण होता है। मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है, और व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा होता है।" यह तभी सम्भव है जब विद्यालयों में नैतिक शिक्षा को सर्वोपरि स्थान दिया जाये। नैतिक शिक्षा का सबसे प्रथम और महत्वपूर्ण उद्देश्य है छात्रों के चारित्रिक गुणों का विकास करना। क्योंकि यही वे गुण हैं जिनके माध्यम से व्यक्ति महान बनता है यह तभी सम्भव है कि जब छात्र सदाचार के मार्ग पर चले। किन्तु सदाचार के मार्ग पर चलना कठिन है और चरित्र निर्माण के लिये मन का नियंत्रण, इन्द्रिय निग्रह और वाणी का संयम आवश्यक है।

भारत में प्राचीन काल में शिक्षा आश्रमों एवं गुरुकुलों में दी जाती थी। उस समय का विद्यार्थी जीवन आदर्श पूर्ण था। विद्यार्थी गृह त्याग कर गुरुकुल निवास करता था, सादा जीवन, उच्च विचार में विश्वास करता था। उस समय का विद्यार्थी वर्तमान में व्याप्त फैशन और विलासिता की बातों से पूर्ण अनभिज्ञ था। उसकी एकग्रता केवल अध्ययन में रहती थी और आस्था गुरुजनों में, परिणाम स्वरूप देश में राम, कृष्ण, महावीर, गौतम बुद्ध ऐसे महापुरुषों का जन्म हुआ, जो केवल भारत के नहीं सम्पूर्ण विश्व के लिये महान हैं।

डा० राधा कृष्णन ने यह बड़े स्पष्ट रूप से कहा था कि "शिक्षा का उद्देश्य न केवल राष्ट्रीय कुशलता है, और न ही अन्तर्राष्ट्रीय एकता, वरन व्यक्ति को यह अनुभव करना है कि उनमें बुद्धि से भी परे महत्वपूर्ण कोई चीज है जिसे आत्मा कहते हैं वह व्यक्ति को शुभ, अशुभ का निर्णय देती है तथा मानव के सम्पूर्ण जीवन पथ पर उसे पग-पग पर बुराई के प्रति सावधान और भलाई के प्रति अग्रसर करती है"।

वर्तमान में जो शिक्षा एवं शिक्षा प्रणाली देश में व्याप्त है वह अंग्रेजों की देन है। व्यवहार कुशल और कूट नीतिज्ञ अंग्रेजी शासक इस बात को भली प्रकार जानते थे कि मात्र शिक्षा के माध्यम से ही भारतीयों को अपना बौद्धिक दास बना सकेंगे और इसी भावना के फलस्वरूप उन्होंने शिक्षा को अपने निहित स्वार्थ साधन का चिरकालिक सहयिका बना लिया। उदार शिक्षा के नाम पर भारत में उन्होंने यहां की दिव्य प्राचीन संस्कृति को समूल नष्ट करने का सुनियोजित षडयंत्र रचा। उनका मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी पढ़े लिखे भारतीयों को उन्हीं की संस्कृति के प्रति तिरस्कार की भावना से भर देना था, तथा उनके आचार विचारों की मान्यताओं के प्रति निष्ठाहीन बनना था, ताकि वे शरीर से भारतीय परन्तु मस्तिष्क से पाश्चात्य के मानस पुत्र बन सकें। अंग्रेज इस उद्देश्य में बड़ी सरलता से सफल हुये और आज इसी का परिणाम है कि मानव पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरण के कारण अपनी नैतिकता से गिर चुका है।

समाज में स्वार्थ, बेईमानी, छल, कपट, पाखन्ड कुमंत्रणा, संघर्ष एवं भ्रष्टाचार का तान्डव नृत्य हो रहा है। आज की डिग्री मूलक शिक्षा के कारण ही पढ़ाई खत्म करके निकला हुआ छात्र स्वयं को एक चौराहे पर खड़ा पाता है।

आवश्यकता इस बात की है कि नैतिक एवं चारित्रिक अवमूल्यन के अबाध में एवं उद्दाम वेग को प्रयत्नपूर्वक रोक कर ढहती हुई सांस्कृतिक आस्था एवं आदर्श को बचाया जाय। शिक्षा को, इन व्याप्त बुराइयों से उबार कर भारतीय संस्कृति के नैतिक आदर्शों पर आधारित किया जाय। यह तभी सम्भव है जब विद्यालयों में नैतिक शिक्षा को सर्वोपरि स्थान दिया जाय। जिससे छात्र तेजयुक्त, साहसी और समृद्धि शाली व्यक्तित्व का विकास कर सकें।

नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत सर्वप्रथम छात्रों में बड़ों के प्रति सामान्य शिष्टाचार के नियमों का ज्ञान कराना परम आवश्यक है जिससे छात्र में दया, सत्य, आज्ञापालन, परोपकार, सहानुभूति एवं स्वावलम्बन की भावनाओं का विकास हो सके। कोठारी आयोग की सिफारिशों के अनुसार स्कूल तथा कालेजों में विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा देने के लिये एक योजना बद्ध कार्यक्रम बनाया जाना चाहिये। मिसाल के तौर पर शैक्षणिक संस्थाओं का कार्य सामूहिक प्रार्थना से प्रारम्भ हो। सभी धर्मों की तात्विक एकता से शिक्षार्थियों को परिचित कराने का प्रयास किया जाय।

प्रारम्भिक अवस्था में छात्रों को महान धार्मिक नेताओं की जीवनी, उनके सुविदित कार्यों तथा ऐसे उपदेशों से परिचित कराना चाहियें, जो सभी धर्मों में प्रचलित हों कक्षाओं में दी जाने वाली शिक्षा के अतिरिक्त हमारी शिक्षण संस्थाओं का सामान्य वातावरण तथा बाह्य प्रवृत्तियां ऐसी होनी चाहिये जिनसे धार्मिक समन्वय और एकता को बढ़ावा मिल सके। भारत के सामने आज चरित्र निर्माण की समस्या प्रमुख है और हमारे नवयुवक, नवयुतियों में नैतिक मूल्यों को जगाना आवश्यक हैं। यह जिम्मेवारी सभी शिक्षकों की होनी चाहिये।

आज का छात्र व्यक्ति, परिवार, समाज, देश तथा विश्व के प्रति अपने कर्तव्यों को समझे, इसके लिए यह परम आवश्यक है कि विद्यालयों में इसके पठन-पाठन की पूरी व्यवस्था हो। साथ ही शिक्षक का अपना व्यक्तित्व भी अनुकरणीय होना चाहिये, जिससे छात्रों पर उसका अनुकूल प्रभाव पड़े। समय-समय पर छात्रों में पाये जाने वाले परिवर्तनों का सही मूल्यांकन किया जावे, एवं छात्रों को इनके इस कार्य के प्रति पारितोषिक द्वारा प्रेरणा दी जावे। आवश्यकता है नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठापना करने वाले परिवेश की। शिक्षार्थी इस वातावरण में अपना अध्ययन समाप्त करके जीवन पथ पर अग्रसर होगा तो समृद्धि और सफलता पथ के प्रत्येक मोड़ पर उसका स्वागत करेगी। संयम और स्वाभिमान से उसका मुख मंडल सर्वदा दीप्त रहेगा, यही छात्र एक दिन उन्नति के शिखर पर पहुंच कर स्वयं ही नहीं, अपितु अपने देश एवं विश्व को गौरवान्वित करेगा, और शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति होगी।

अथक प्रयासों के द्वारा शिक्षकों को शैक्षणिक संस्थाओं को अधिक उपयोगी बनाना सम्भव होगा। शिक्षकों का कर्तव्य है कि उन पर जिस युवा पीढ़ी की जिम्मेदारी सौंपी गयी है उसके चरित्र निर्माण में अपना योगदान दें। वास्तविक अर्थ में राष्ट्र के सच्चे निर्माता बनें। शिक्षकों का कर्तव्य है कि छात्रों को राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए प्रशिक्षित करने का भरसक प्रयत्न करें। लेकिन सरकार का भी यह कर्तव्य है कि वह शिक्षकों की सामाजिक प्रतिष्ठा को ऊंचा उठाये और उन्हें दैनिक चिन्ताओं से मुक्त करे। जनतांत्रिक तथा समाजवादी व्यवस्था की प्रक्रिया में एक असन्तुष्ट शिक्षक निश्चय ही अभिशाप बन जाता है। पवित्र ज्ञान मन्दिर बनें, और इसके लिए आवश्यक सुविधायें तथा साज-सज्जा जुटाने में सभी नीतिज्ञ मनसा, वाचा, कर्मणा सहयोग देकर आने वाले कल का भविष्य उज्जवल करें।

जनसंख्या वृद्धि और घटती सुविधाएं

श्री गुलाब राय, प्रधानाध्यापक,

जूनियर बेसिक स्कूल, नगलाशर्की, बदायूं ।

स्वतन्त्रता के बाद जब हमारे देश की बाग डोर जनता के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में आई तो उन्होंने सोचा कि इस देश का विकास कैसे किया जाय ? इसके लिए अनेक उपाय किये गये । पंचवर्षीय योजनायें बनाकर महत्वपूर्ण निर्माण कार्य किये गये । शिक्षा के लिये विद्यालय, उत्पादन के लिये उद्योग, आने जाने के लिये यातायात के साधन, स्वास्थ्य के लिये चिकित्सालय आदि अनेक साधन जुटाकर इस देश के विकास का प्रयास किया गया । इसके फल-स्वरूप भी वांछित प्रगति नहीं हुई जब इसके कारण का पता लगाने पर विचार विमर्श किया गया तो विद्वानों का मत था कि विकास कार्यों में प्रगति तो हुई किन्तु बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण प्राप्त लाभ को इतने भागों में बांटना पड़ गया कि वांछित प्रगति प्रतीत नहीं होती । स्वतन्त्रता के पैंतीस वर्षों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए जगह-जगह विद्यालयों की स्थापना की गई । इसके होते हुये भी अधिकांश जनता अशिक्षित रह गई । अनेक नये उद्योगों की स्थापना की गई फिर बेरोजगारी बरसाती नदियों की भांति बढ़ रही है । यातायात के अनेकों साधनों का विस्तार किया गया फिर भी रेल गाड़ियों और बसों में स्थान नहीं मिलता । अन्तरिक्ष सुरक्षा के साधनों का विस्तार किया गया फिर भी कानून व्यवस्था नियंत्रण में नहीं आई । उत्पादन के होते हुये भी आय प्रति व्यक्ति कम होती चली जा रही है । आखिर इन सब का क्या कारण है जनसंख्या वृद्धि ही इन सभी तथ्यों का मुख्य कारण है । इसी एक कारण से सारी व्यवस्थायें एवं प्रयास विफल हो जाते हैं और हमारे जनप्रतिनिधियों को जनता का आक्रोश सहना पड़ता है तथा देश की राजनीति भी स्थिर नहीं रहती । अब हम यह सोचने के लिये मजबूर हैं कि जनसंख्या इतनी तेजी से क्यों बढ़ रही है । इसके लिये निम्न तथ्यों पर विचार करना होगा ।

भारतवर्ष पहले ही पर्याप्त जनसंख्या वाला देश रहा है । लगभग 900 वर्ष की पराधीनता ने इसे अशिक्षा, दरिद्रता और रूढ़िवादिता की जंजीरों से जकड़ दिया इसके फलस्वरूप देश में बहुत ही अनियन्त्रित ढंग से जनसंख्या बढ़ती रही और भारत प्रगति पथ पर संसार के अन्य देशों से पीछे रह गया । स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने इस ओर गम्भीरता से ध्यान दिया । अनेक विकास कार्यों के लिये योजनायें बनाई गई फिर भी सन्तोषजनक प्रगति नहीं हो सकी सन् 1947 में हमारे देश की जनसंख्या 44 करोड़ थी जब कि 1971 में 60 करोड़ तक पहुंच गई इस समय हमारे देश की जनसंख्या 68.38 करोड़ है । भारत जनसंख्या की दृष्टि से संसार में चीन के बाद सब से विशाल राष्ट्र है । सुरसा के मुख के समान जनसंख्या की बढ़ती दर भयावह है । यदि यही गति रही तो सन 2000 में हमारे देश की जनसंख्या लगभग 1 अरब पहुंच जायेगी ।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री माल्थस का मत है कि सामान्य स्थिति में किसी भी देश की जनसंख्या 25 वर्षों में दो गुनी हो जाती है । इस प्राकृतिक नियम के अनुसार भारत में भी जनसंख्या बेतहाशा बढ़ रही है । चिकित्सा विज्ञान की उन्नति एवं विस्तार के फलस्वरूप हमने महामारी एवं क्षयरोगों से होने वाली अकाल मृत्यु दर नियन्त्रण पा लिया है, परिणामतः मृत्यु दर आवश्यकता से अधिक घट गई है । हमारे देश के अशिक्षित लोग जनसंख्या वृद्धि से आने वाले संकट की बात सोच भी नहीं पाते हैं । इसलिये वह इस ओर से उदासीन रहते हैं । हमारे यहां भाग्यवाद, संकीर्ण भावनाओं आदि के कारण सन्तान को ईश्वर की देन मानकर इसे रोकना पाप समझते हैं । बेरोजगारी, सम्मिलित परिवारों का न होना इसके सहायक हैं । जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रण में करके ही जनमानस के सैलाब को रोका जा सकता है । तभी इस राष्ट्र की वांछित प्रगति होगी और प्रति व्यक्ति आय बढ़ सकती है ।

अब यह स्पष्ट हो जाता है कि जनसंख्या वृद्धि को यदि न रोका जायेगा तो न हमारे व्यक्तिगत जीवन में सम्पन्नता आयेगी और न राष्ट्र ही विकसित होगा । अतः देश के प्रत्येक नागरिक का पुनीत कर्तव्य है कि वह अपने परिवार को सीमित रखे । परिवार बड़ा न हो इसके लिये प्रत्येक नागरिक यह सोचे कि सन्तानोत्पत्ति को कैसे रोका जा सकता है, प्राकृतिक नियम है ब्रह्मचर्य, संयम इस उपाय को तो केवल विरले ही अपना सकते हैं । अशिक्षित जनता के लिये यह आवश्यक हो गया है कि जनसंख्या वृद्धि से होने वाली हानियों से प्रचार एवं प्रसार द्वारा समझाया जाय । प्रचार और प्रसार को इतना बढ़ावा दिया जावे कि हमारे देश के सुदूर देहात एवं झुग्गी झोपड़ियों के निवासी भी यह सोचने को मजबूर हो जाय कि परिवार सीमित रखना ही हमारी तथा अपने परिवार की खुशी का माध्यम है । इसके लिये कृत्रिम उपाय विज्ञान की सहायता से जो खोजे गये हैं उन्हें अपनाया जाय । स्त्री पुरुष दोनों के लिये सन्तति निरोधक औषधियों को प्रयोग में लाना चाहिये । इसके साथ ही साथ स्त्री पुरुषों के आपरेशन के माध्यम से बन्ध्याकरण के अनेक कारगर उपाय खोजे गये हैं । शिक्षा के माध्यम से भी नियोजन की महत्ता को बताया जाय, विशेष कर निर्धन अशिक्षित बेरोजगारों के विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ा दी जाय । इन सभी उपायों के माध्यम से जनसंख्या पर नियन्त्रण पाया जा सकता है । वैसे सरकार इस दिशा में विशेष ध्यान दे रही है । फिर भी राष्ट्रीय समस्यायें केवल सरकारी प्रयत्न से हल नहीं होती हैं । उनके लिए जन सहयोग भी उतना ही आवश्यक है । जितना कि सरकारी योगदान ।

द्रुत गति से बढ़ती हुई जनसंख्या का प्रभाव समाज पर, राष्ट्र पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है । जिस परिवार में बच्चों की अधिक संख्या होती है वहां उनके पालन पोषण, शिक्षा-दीक्षा, चिकित्सा-आदि की समुचित व्यवस्था नहीं

होती । बच्चे कमजोर तथा असहाय हो जाते हैं । दुर्बल, निस्तेज, अशिक्षित, दरिद्र नयी पीढ़ी बढ़ती चली जाती है इससे उनका उनके परिवार का अन्तोगत्वा राष्ट्र का अहित होता है ।

हमारी सरकार देश के विकास के लिये एवं राष्ट्र की सुख समृद्धि के लिये अनेक योजनायें बनाती है उत्पादन बढ़ता है फिर भी जनसंख्या की वृद्धि के कारण उपलब्धियां कम पड़ जाती हैं । देश के अधिकांश निवासी गरीबी की रेखा के नीचे ही जीवनयापन करते हुये अपनी जीवन लीला को समाप्त कर लेते हैं । जिस परिवार के जीवन का कोई उद्देश्य न हो सुख समृद्धि का नाम न हो तो समाज पर इससे अधिक कुप्रभाव और क्या हो सकता है ? बड़े परिवार की समस्यायें भी बड़ी होती हैं बड़े परिवार में प्रायः कोई व्यक्ति, चोर, झूठा, बेरोजगार तो कोई बीमार है इस प्रकार के अनियन्त्रित परिवार में अशान्ति का साम्राज्य हो जाता है । जिस देश के अधिकांश परिवार अशान्ति में हों तो सारा राष्ट्र गर्त के रास्ते पर अग्रसर होने लगता है । जिससे राष्ट्र की सुरक्षा को भी खतरा पैदा हो जाता है । इसलिये नियन्त्रित परिवार से अनेकों लाभ हैं बच्चे और माता पिता सभी स्वस्थ्य और प्रसन्न रहते हैं । बच्चों की शिक्षा, चिकित्सा आहार की व्यवस्था भी उचित ढंग से होती है ।

सृष्टि भगवान की देन है फिर भी व्यवस्था की दृष्टि से हर देश की सीमायें निर्धारित हैं । वह रबड़ की भांति घटाई-बढ़ाई नहीं जा सकती है । जनसंख्या की वृद्धि से पृथ्वी इतने भागों में बट जायेगी कि रहने मात्र को भी जगह उपलब्ध नहीं होगी । जनसंख्या की वृद्धि के कारण स्पष्ट हो जाता है प्रति व्यक्ति के अनुपात में कम सुविधाओं का आना । उदाहरण के लिये यदि किसी परिवार के पास 10 एकड़ जमीन, मकान तथा सुख समृद्धि की सभी सुविधायें हैं तो वह सुखी परिवार माना जायेगा । यदि इसी परिवार में 10 बच्चे हो जाते हैं। तो सभी सुविधाओं का विभाजन हो जायेगा । भूमि का भी विभाजन हो जायेगा, इस प्रकार यह परिवार धीरे-धीरे दरिद्रता की ओर अग्रसर हो जायेगा और जनसंख्या की वृद्धि होते रहने से खाने को रोटी पहनने को कपड़े और रहने को मकान भी कम पड़ने लगेगा । शिक्षा दीक्षा भी उस स्तर की नहीं हो सकेगी जिस स्तर की होनी चाहिये । मनोरंजन से लेकर जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति भी शेष रह जायेगी । जनसंख्या की वृद्धि के कारण ही भारी उत्पादन के पश्चात् भी जीवन स्तर में गिरावट आती जा रही है । अशान्ति का विस्तार होता जा रहा है, कानून व्यवस्था भी अव्यवस्थित होती जा रही है किसी का जीवन सुरक्षित नहीं है । किसी को शान्ति नहीं है सुख सुविधाओं का अभाव होता जा रहा है । महंगाई दिनोंदिन बढ़ती जा रही है । जिससे भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, अनाचार, दुराचार पनप रहे हैं हर आदमी भौतिकतावादी होता जा रहा है जिससे स्वार्थी पनपता जा रहा रहा है । भाई चारा समाप्त होता जा रहा है नैतिकता नाम की कोई चीज नहीं है । जाति धर्म, भाषा क्षेत्र वाद के नाम पर अशान्ति फैल रही है सुविधाओं का मिलना कठिन ही नहीं असम्भव भी है । इन सभी कुप्रथाओं का आधार जनसंख्या की वृद्धि है । जितना जनसंख्या का घनत्व बढ़ेगा उतनी ही सुविधाओं का विभाजन होगा । अतः घटती हुई सुविधाओं का सीधा सम्बन्ध जनसंख्या वृद्धि से ही है ।

सीता की खोज के समय सुरसा नाम की राक्षसी अपना मुंह बढ़ाये जा रही थी उस समय हनुमान जी को अपना शरीर छोटा करके ही मुक्ति मिली थी । इसी प्रकार जनसंख्या भी सुरसा के समान मुंह खोले हमारे सामने खड़ी है हमें रामायण के इस प्रसंग से प्रेरणा लेनी चाहिये और परिवार रूपी हनुमान को अपना रूप छोटा करना पड़ेगा तभी मुक्ति या सुख सुविधायें मिल सकेंगी । परिवार को सीमित रखना समय की मांग है । एक व्यक्ति की नहीं सारे राष्ट्र की आवश्यकता है । जब परिवार हमारे सीमित होंगे तो खाद्यान्न से लेकर शिक्षा और सुरक्षा की पूर्ति हम अपने उत्पादन से ही कर लेंगे हमें अन्य देशों के सामने हाथ फैलाना नहीं पड़ेगा । इससे हमारी प्रतिष्ठा विश्व में बढ़ जायेगी । अतः परिवार सीमित रखना व्यक्तिगत सामाजिक, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय सभी दृष्टियों से अति उपयोगी और आवश्यक है ।

विद्यालयों में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे ?

श्री नन्दादत्त बड़थ्वाल,
प्रधानाध्यापक,
आदर्श विद्यालय बड़थ,
पोस्ट—खोले,
जनपद—पौड़ी गढ़वाल ।

नैतिक शब्द की उत्पत्ति 'नीति' शब्द से हुई है और नीति का अर्थ करणीय कार्य या उचित कार्य हेतु उपदेश से है । दूसरे शब्दों में प्रत्येक समाज द्वारा व्यक्ति के चारित्रिक विकास हेतु सामाजिक एवं धार्मिक मानदण्डों के अनुरूप आचरण का उपदेश ही 'नीति' कहलाती है, और ऐसी नीति के अनुरूप शिक्षा को ही नैतिक शिक्षा कहते हैं ।

अस्तु नैतिक शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य बालकों का चारित्रिक विकास है । चरित्र का जीवन में अप्रतिम महत्व है । यह तथ्य सनातन सत्य है । हमारे प्राचीन साहित्य ऽ चरित्र का मूल्यांकन करते हुए लिखा गया है—

वृत्तम् यत्नेन संरक्षेत् वित्तमायाति याति च ।
अक्षीणो वितत ऽ क्षीणो, वृत्ततस्तु हतोहतः ॥

आंग्ल भाषा में भी सुचरित्र की महिमा को स्वीकारते हुए कहा गया है :—

If wealth is lost nothing is lost
If health is lost something is lost.
If character is lost every thing is lost.

अतः चरित्रबल समन्वित नागरिकों का निर्माण प्रत्येक देशकाल एवं परिस्थितियों में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं मानवता के उन्नयन हेतु प्रथम आवश्यकता है और यह कार्य हमारे विद्यालय ही कर सकते हैं । क्योंकि विद्यालयों की स्थापना बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु की गयी है । पुनः आज के अर्थ प्रधान युग में माता पिता तो अर्थोपार्जन एवं सुख समृद्धि की मृग मरीचिका के पीछे दृगभ्रान्त हैं । उन्हें तो नवजात शिशु की देखरेख का भी समय नहीं । फलतः वर्तमान में बालक-बालिकाओं के नैतिक उन्नयन का दायित्व मात्र विद्यालय ही निभा सकते हैं ।

अब प्रश्न यह उठता है कि नैतिक शिक्षा ही क्यों दी जाय ? इस सन्दर्भ में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों मतों का विवेचन अपेक्षित है ।

प्राचीन भारतीय मान्यता के अनुसार बीज में वृक्ष की सम्पूर्ण सम्भावनायें, विलक्षणताएं एवं विशेषताएं सन्निहित होती हैं । और उपयुक्त वातावरण एवं अपेक्षित परिस्थितियां प्राप्त होकर वे समस्त विशेषताएं प्रकट हो जाती हैं । ठीक इसी प्रकार बालक को जन्म से ही अनन्त शक्ति सम्पन्न एवं ब्रह्म के गुणों से युक्त माना गया है । इसलिए महान विदुषी मदालसा अपने पुत्रों को ' शुद्धऽसि-बुद्धोऽसि-ब्रह्मोऽसि" कहकर सम्बोधित करती है । आंग्लकवि वड्सवर्थ ने भी—"Child is the father of men" कहकर इसी ओर इंगित किया है । प्राचीन भारतीय ऋषि एवं महर्षियों ने बालक का भविष्य पूर्वार्जित संस्कारों पर निर्भर माना है और शुद्ध संस्कारों के सृजन हेतु नैतिक शिक्षा की अपरिहार्यता को स्वीकार किया है ।

इसके विपरीत पाश्चात्य दर्शन के अनुसार बालक जन्म से न तो नैतिक होता है और न अनैतिक, न अच्छा होता है और न बुरा, उसका भविष्य वातावरण पर निर्भर करता है, इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वाट्सन का कथन दृष्टव्य है—"बालक पूर्णतः वातावरण की देन एवं उपज है, मुझको एक सामान्य बालक दो, मैं उसको डाक्टर, इंजीनियर, चोर, डाकू अपराधी जो चाहे बना सकता हूं ।"

उपर्युक्त दोनों मान्यताओं में अत्युक्ति हो सकती है किन्तु यह तथ्य तो उजागर होता ही है कि बालक का सर्वांगीण विकास शिक्षा के द्वारा ही होता है । शिक्षा जब तक नैतिक मानदण्डों पर आधारित नहीं है तब तक वह अधूरी है । देश व राष्ट्र का सम्यक विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक बालक बालिकाओं को नैतिक शिक्षा नहीं दी जाती है । हमारे भारत ही क्या आज समस्त विश्व में छात्र-छात्राओं में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता, उद्दण्डता, स्वेच्छाचारिता एवं हिंसोन्मुखता का स्पष्ट कारण यही है कि विद्यालयों में नैतिक शिक्षा की ठोस व्यवस्था नहीं है । इसके अतिरिक्त आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति एवं पाश्चात्य भौतिकवादी दृष्टिकोण के अन्धानुकरण के परिणामतः हम दिनो-दिन नैतिक मूल्यों से दूर होते जा रहे हैं । आज हम अध्यात्मवाद तथा

भौतिकवाद में सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके हैं । गीतोक्त वाणी है--"संशयात्मा विनश्यति" । अतः आज नैतिक मूल्यों के विनाश के कगार पर खड़े अपने प्यारे भारत के रक्षार्थ एवं अपने प्राचीन गौरव को पुनस्थापित करने निमित्त विद्यालयों में नैतिक शिक्षा की ठोस व्यवस्था समय की मांग है ।

"Not gold but only men can make nation great and strong" । आंग्लकवि की यह उक्ति हमको बार-बार याद दिलाती है कि हमारे विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राएं ही भावी भारत के स्तम्भ हैं । दूसरी ओर हम देखते हैं कि भारत चारों ओर से शत्रुओं से घिरा है । अतः समय रहते सावधान होना परमावश्यक है । और इन सब समस्याओं के लिए नैतिक शिक्षा संजीवनी बूटी है । यह मनोवैज्ञानिक तथ्य सत्य है कि बचपन की शिक्षा अधिक प्रभावी, स्थिर एवं फलदायी होती है ।

अब समस्या यह उठती है कि धर्म निरपेक्ष राष्ट्र भारत में नैतिक शिक्षा का स्वरूप क्या हो और वह दी कैसे जाय ? नैतिक शिक्षा धर्म पर आधारित हो तभी मनुष्य पशुत्व से मुक्त होकर मानव धर्म का पालन कर सकता है । हमारे शास्त्रों में कहा गया है--

"आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।

धर्मोहि तेषामधिको विशेषो धर्मेणहीना पशुभिः समानाः ।"

धार्मिक शिक्षा का तात्पर्य किसी धर्म विशेष की शिक्षा से नहीं बल्कि सभी धर्मों के आदर्श सिद्धान्तों की शिक्षा तथा तदनुरूप आचरण बालक-बालिकाओं को कराया जाय । प्रत्येक धर्म के महापुरुषों के जीवन वृत्तों का अध्ययन शिक्षा का आवश्यक अंग हो ।

आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि पश्चिमी राष्ट्र भौतिकवाद की पराकाष्ठा पर आरूढ़ होने पर भी वहां के नागरिक शान्ति की खोज में पूर्व की ओर दौड़ रहे हैं । वहां गूंजने वाली "हरे कृष्णा और हरे राम" की ध्वनि ज्वलन्त प्रमाण है कि भौतिकवाद की चरम सीमा भी मानव की आत्मा को संतृप्त नहीं कर पायी है । अस्तु हमको आध्यात्मवाद की धरा पर भौतिकवाद के मोहक एवं आल्हादक सरोज उगाने हैं तो नैतिक शिक्षा धर्म परक होनी चाहिए और इसके लिए नितान्त आवश्यक है कि अध्यापक स्वयं सदाचारी हो । अनुभवजन्य सत्य है कि बालक सर्व प्रथम अनुकरण से सीखता है । गुरू उसका आदर्श होता है अतः अध्यापक ऐसे नियुक्त किये जायं जो ज्ञान के भण्डार तो हों ही, नैतिक बल से भी समालंकृत हों । विद्यालय का वातावरण स्वच्छ, पावन एवं सरस हो । विद्यालयों में दलगत राजनीति, भाई भतीजावाद, स्वार्थ, छल कपट प्रभृति दुष्टप्रवृत्तियों का मूलोच्छेदन किया जाय ।

विविध खेल, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्रिया कलापों के द्वारा नैतिक मूल्यों की स्थापना में महान योगदान प्राप्त होता है । अतः प्रत्येक विद्यालय में इन पाठ्य सहगामी क्रिया कलापों का संचालन अनिवार्य कर दिया जाय । चलचित्र, मैजिक लैन्टर्न शो, दूर-दर्शन आदि के द्वारा भी विद्यालयों में नैतिक शिक्षा दी जाय ताकि नैतिक शिक्षा बोझिल न होकर, सरस बन जाय और छात्र-छात्राओं के आकर्षण का केन्द्र बने, वर्तमान में छात्र-छात्राओं में असन्तोष एवं अनुशासनहीनता इसलिए भी है कि वर्तमान शिक्षा न तो उनकी रुचि के अनुरूप है और न यह उनको आजीविका कमाने योग्य ही बना पा रही है । अतः शिक्षा मनोवैज्ञानिक, आजीविकोन्मुख एवं जीवन से जुड़ी हो । उससे उनका निराशावाद समाप्त हो जायेगा और नैतिक मूल्यों के प्रति उनकी आस्था सुदृढ़ हो जायेगी तो अनुशासन की स्थापना स्वतः सुदृढ़ हो जायेगी ।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बालक-बालिकाओं के नैतिक उत्थान के लिए माता पिता को सजग होना चाहिए । परिवार को सामाजिक गुणों की प्रथम पाठशाला कहा गया है । और आज का छात्र गुरुकुल या आश्रम में निवास नहीं करता बल्कि अधिकांश समय अपने घर में व्यतीत करता है । अतः पारिवारिक वातावरण स्वयं में नैतिक मूल्यों का घर बने । तभी विद्यालयों में प्रदान की जाने वाली नैतिक शिक्षा वास्तव में फलदायी बनेगी ।

अन्त में प्रसन्नता का विषय है कि हमारी जनप्रिय सरकार ने समय की इस मांग को अनुभव किया है और विद्यालयों में नैतिक शिक्षा की व्यवस्था हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित किया है । अब यह हम अध्यापकों, संरक्षकों एवं सरकार का पावन कर्तव्य है कि हम नैतिक शिक्षा को पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न रखकर व्यावहारिक मानदण्डों में प्रतिबिम्बित करें ।

विद्यालयों में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे ?

श्री नाथू राम तिवारी,
प्रधानाध्यापक, प्रा० शि० दिगाली चौड़, पिथौरागढ़।

नैतिकता हमारे आचरण का मूल आधार और मापदंड है। इसके आधार पर ही व्यक्ति के कार्यों व व्यवहारों की परख होती है। दूसरे शब्दों में, आचरण का सही या गलत होना केवल नैतिकता के आधार पर व्यक्त होता है। वर्तमान जीवन-व्यवस्था इसलिए संकटपूर्ण हो गई है कि व्यक्ति अपने नैतिक आचरण से काफी दूर चला गया है। नैतिकता के विकास का कोई स्वस्थ और सुनियोजित कार्यक्रम क्रियान्वित नहीं है। व्यक्ति के भीतर अच्छी रुचियों का विकास जैसे अवरुद्ध सा हो गया है। शिक्षा, जिसकी सभी समस्याओं का समाधान नैतिकता में निहित है और जो नैतिकता के विकास का एक मुख्य साधन है, उद्देश्य विहीन है। आवश्यकता इस बात की है कि समाज में उन साधनों का विकास किया जाय जिनके द्वारा व्यक्ति का आचरण प्रत्यक्ष प्रभावित होता है।

हमारे मनीषियों ने समाज में नैतिकता का प्रतिष्ठापन पग-पग पर किया है। ज्यों ही बालक गुरुकुल में प्रवेश पाते थे उन्हें शिक्षित किया जाता था—"मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, गुरुदेवो भव, सत्यं वद, धर्मंचर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः। इससे बढ़कर नैतिकता की ओर क्या शिक्षा हो सकती है।

शिक्षा मूल रूप में व्यक्ति के भीतर एक संस्कार डालती है। व्यक्ति उन्हीं संस्कारों में बंधकर पूरा जीवन व्यतीत करता है। जो शिक्षा मनुष्य के संस्कार पर प्रभाव न डाल सके, वह वास्तविक शिक्षा नहीं है।

नैतिकता एक ऐसा शब्द है जिसके अर्थ और स्वरूप का स्पष्ट करना कठिन है, साधारण बोलचाल की भाषा में हम नैतिक शब्द का प्रयोग अच्छे कार्य के सन्दर्भ में करते हैं। नैतिकता की परिभाषा देते हुये प्रसिद्ध समाजशास्त्री 'मैकईवर' और 'पेज' ने कहा है कि "वास्तविक रूप में नैतिकता नियमों का वह समूह है, जिसके द्वारा व्यक्ति का अन्तःकरण सत्य व असत्य का ज्ञान करता है।" प्रोफेसर के० डेविस ने कहा है कि "नैतिकता कर्त्तव्य की वह आन्तरिक भावना है, जिसमें उचित अनुचित का भाव सन्निहित हो।" अतः नैतिकता का अर्थ मात्र नियमों व कर्त्तव्यों के समूह से ही नहीं है बल्कि यह अनिवार्य है कि उन नियमों को सामाजिक मान्यता भी प्राप्त हो, सामाजिक मान्यताप्राप्त नियमों के अनुसार कार्य करना नैतिकता है॥ नैतिकता पूर्णतः अन्तःकरण से सम्बन्धित है।

आज हमारी मूलभूत शिक्षा पद्धति के ढर्रे को सुधारने की आवश्यकता है। यही सब लोग कह रहे हैं किन्तु सुधारने में कोई सहयोग नहीं दे रहा है। आज विद्यालयों में शिक्षा भारतीय शैली पर इस प्रकार करने की आवश्यकता है कि जहां बालकों का बौद्धिक विकास हो वहीं उनमें चारित्रिक, शारीरिक मानसिक विकास के साथ-साथ उनमें समाज में अपने कर्त्तव्यों को पालन करने की सार्वांगीण क्षमता का भी विकास हो। हमारे बच्चे समाज के लिए बोझ न बनें। सत्य भाषण, मातृभूमि की सेवा, राष्ट्रभक्ति आदि गुण तो उनमें पूरे हों ही, अपितु इसके अतिरिक्त अपने से श्रेष्ठ लोगों, अपने मनीषियों अपने कर्त्तव्यों के प्रति भी सचेत रहें। हमें अपने बालकों में वह विकास की गति देनी है कि उनका कोई भी कर्म, कोई भी बात और कोई भी कदम गलत न हो।

नैतिक शिक्षा के साधनों का वर्गीकरण निम्नांकित रूप में किया जा सकता है :—

(1) प्रत्यक्ष।

(2) अप्रत्यक्ष।

प्रत्यक्षसाधन—नैतिकता के प्रत्यक्ष साधन वे हैं, जो सीधे बालक व बालिका के नैतिक-चरित्र को प्रभावित करते हैं नैतिक साहित्य, चित्र, चलचित्र और विविध प्रकार के कार्यक्रम इसी श्रेणी में आते हैं। नैतिक साहित्य प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय का एक आवश्यक अंग होना चाहिए। नैतिक साहित्य प्राथमिक स्तर पर चित्रमय होना चाहिए। चित्रमय नैतिक प्रसंगों का बालक-बालिका पर गहरा प्रभाव पड़ता है। संयोगवश 'अमर चित्रकथा' और 'गौरव गाथा' के रूप में कुछ अच्छी पत्रिकाएं आ रही हैं। इनको विद्यालयों में उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

नैतिक शिक्षा देने के लिए घर और विद्यालयों में चित्रों का काफी महत्व है। चलचित्र भी बालक-बालिकाओं के मन-मस्तिष्क को जल्दी प्रभावित करते हैं और इनका प्रभाव भी देर तक बना रहता है। सदाचार के मानदंडों के आधार पर विविध चलचित्रों को सुविधानुसार बालक-बालिकाओं को दिखाया जाना चाहिए।

बच्चों में सदाचार का प्रादुर्भाव अच्छी रुचि के कारण होता है। अच्छी रुचि उत्पन्न करने में विद्यालय के विविध कार्यक्रमों का बड़ा महत्व है विद्यालय में ऐसे खेलों को विशेष स्थान देना होगा, जिनके द्वारा बालक-बालिकाओं का सहयोग, सहानुभूति, न्याय, भक्तिभाव, आज्ञापालन आदि का प्रशिक्षण प्राप्त हो। कार्यक्रम नैतिक व्यवहारों को प्रशिक्षित करने के सशक्त साधन हैं, विद्यालयों में महापुरुषों की जयंतियां मनाकर तथा रंगमंच में अच्छे चरित्रों की भूमिका में विद्यार्थियों को उतारकर नैतिक शिक्षा का मूर्तरूप प्रकट किया जा सकता है।

सामूहिक प्रार्थना, वैयक्तिक प्रार्थना व प्रवचन, देशभक्तिपूर्ण गान, आचार्यों द्वारा कथित महानपुरुषों, वीरों, सन्तों की कहानियाँ आदि भी विशेष महत्व के हैं। दर्शनीय स्थलों जैसे देवालय, ऐतिहासिक स्थलों, ग्रामीण अंचलों आदि का भ्रमण भी सहायक है।

अप्रत्यक्ष साधन—अप्रत्यक्ष साधन वे हैं, जो बालक-बालिकाओं के नैतिक चरित्र को अनौपचारिक रूप में प्रभावित करते हैं, अप्रत्यक्ष साधन, जिसके अन्तर्गत माता-पिता का आचरण, अध्यापक का आचरण और वातावरण आता है, धीरे-धीरे परन्तु स्थायी रूप से बच्चे के नैतिक व्यवहार की दिशा को निश्चित करते हैं।

बच्चों के आचरण सम्बन्धी अनेक व्यवहारों का निर्माण विद्यालय में आने से पूर्व घर पर ही हो जाता है। बच्चा घर पर अपने माता पिता या बड़ों को जिस प्रकार व्यवहार करता देखता है, उसी प्रकार का व्यवहार वह स्वयं भी करता है। अच्छे आचरण वाले माता-पिता की सन्तान में उसी प्रकार के आचरण की सम्भावना अधिक होती है परन्तु अनैतिक संस्कार वाले माता-पिता की संतान में अच्छे आचरण के विकास की सम्भावना एकदम नहीं होती है।

बालक-बालिकाओं के नैतिक चरित्र के निर्माण में अध्यापक-अध्यापिकाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। नैतिक शिक्षा के साधनों में सर्वश्रेष्ठ और सम्पूर्ण शैक्षिक क्रिया की परिधि व केन्द्र अध्यापक होता है। उसके व्यक्तित्व का विद्यार्थियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। लगन से कार्य करने वाले कर्मठ, समर्पित भाव वाले आदर्श आचार्य अपने उत्तम व्यवहार से छात्रों को प्रेरणा देते हैं। विद्यालय में अध्यापक-अध्यापिकाओं का पारस्परिक व्यवहार प्रधानाध्यापक और अध्यापकों का सम्बन्ध और अध्यापक और विद्यार्थी का सम्बन्ध भली प्रकार से नैतिकता को प्रभावित करते हैं।

वातावरण भी नैतिक शिक्षा को विशेष रूप से प्रभावित करता है। वातावरण जिस प्रकार का होगा नैतिक व्यवहार भी उसी प्रकार का होगा। अच्छे और स्वस्थ वातावरण के बीच ही आचरण के अच्छे गुणों का विकास होता है। इसलिये प्रयत्न पूर्वक घर और विद्यालय में अच्छे व स्वस्थ वातावरण की सृष्टि की जानी चाहिये।

यदि आज के सामाजिक, भौतिक तथा अध्यात्मिक संघर्ष को समाप्त करना है तो मानवीय मूल्यों की शिक्षा देनी होगी। नैतिक शिक्षा के पाठ्यक्रम बने हैं और पाठ्यपुस्तकें भी तैयार की गई हैं। नैतिक शिक्षा को पढ़ाया जाने लगा है। परन्तु पाठ की तरह पढ़ने से नैतिक व्यवहार का निर्माण नहीं होता है। आवश्यकता इस बात की है कि नैतिक व्यवहार शिक्षा की प्रक्रिया का अंग बन जाय।

पारिस्थितिक असन्तुलन, कैसे रोकें ?

श्री उम्मेद सिंह बिष्ट,
प्रधानाध्यापक, प्राथमिक विद्यालय, सितारगंज,
नैनीताल ।

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण—

पारिस्थितिकी (ecology) की सीधी एवं स्पष्ट परिभाषा यही हो सकती है कि मानव एवं समस्त जैविक प्रजातियों सहित भूमि, जल एवं वायुमण्डलीय अवस्थाओं का समग्र विश्लेषणात्मक अध्ययन अर्थात् जैविक विकास क्रम एवं प्रजातियों के सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों का प्रकृति पर प्रभाव तथा प्रकृति में क्रमिक रूप से होने वाले परिवर्तनों का समस्त जैविक प्रजातियों पर प्रभाव ।

यूं तो डार्विन के जीव विकास के इतिहास से स्पष्ट है कि विकास-क्रम के प्रारम्भिक काल की कई जीव प्रजातियां यथा डाइनासोर इत्यादि विकास क्रम के साथ-साथ प्रभाव में आकर लुप्त हो गयी । लेकिन पर्यावरण शास्त्री एवं जीव विज्ञानी तर्क देते हैं कि प्रजातियों का इस प्रकार लुप्त होना भी प्रकृति के विकास क्रम का ही एक अंग है । मौजूदा सदी में हम पाते हैं कि कई जीव एवं वनस्पति प्रजातियां समाज के व्यावसायीकरण एवं प्रकृति के व्यापारिक विदोहन के कारण समाप्त हो चुकी हैं अथवा लुप्तप्राय हैं । जैविक प्रजातियों के इसी क्रमिक अवधान के प्रतिवाद स्वरूप ही पारिस्थितिकी का विचार सामने आया है ।

परिस्थितिकी ने एक बार पुनः प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को प्रतिध्वनित किया है । भारतीय समाज में अनायास ही इस तरह के अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि प्राचीन भारतीय समाज में मानव ने अपने आसपास की समस्त जीव प्रजातियों से सहज भावनात्मक सम्बन्ध बना लिये थे, पतिगृह की ओर जाती ऋषि कन्या शकुन्तला को आश्रम के वृक्षों द्वारा दिये गये शुभ आशीर्वचन, वियोगी राम द्वारा पशुपक्षी, लता गुल्मों से सीता का पता पूछना यह सब प्राचीन भारतीय प्रज्ञा के पारिस्थितिक ज्ञान के ही प्रमाण हैं । अनेक प्राचीन भारतीय आयुर्वेदों ने ही नहीं वरन पाश्चात्य वनस्पति विशेषज्ञों ने भी स्वीकार किया है कि वह, किसी पेड़ के सम्मुख विनत होकर मैत्रीभाव से बैठे तो वृक्ष ने स्वतः ही अपने औषधिगुणों को परिभाषित किया ।

पारिस्थितिक असन्तुलन—

गांधी जी ने एक बार स्पष्ट शब्दों में कहा था कि प्रकृति के पास सभी की आवश्यकताओं के लिये तो पर्याप्त है किन्तु वह कुछ व्यक्तियों का भी लोभ पूरा नहीं कर सकती । वस्तुतः मौजूदा पारिस्थितिक असन्तुलन के लिये यही लोभवृत्ति उत्तरदायी है । जब तक मानव समाज प्रकृति का उपयोग अपने भरण-पोषण एवं सामान्य आवश्यकताओं के लिये कर रहा था तब तक प्रकृति में समस्त जीव वनस्पति प्रजातियों के बीच एक संगति (Harmony) बनी हुई थी किन्तु जैसे-जैसे तकनीकी, वैज्ञानिक कृषि, आणविक ऊर्जा साधनों, तीव्र यातायात साधनों एवं भारी उद्योगों का विकास हुआ वैसे-वैसे ही पारिस्थितिक असन्तुलन की परिस्थितियां उग्रतम होती चली गयी, आज तो हालत यह है कि विकसित पश्चिमी देशों की नदियां मत्स्य विहीन हो गयी हैं तथा मानसूनी प्रथम फुहारें A id rains की जलन एवं दुर्गन्ध लेकर वैज्ञानिक क्षमताओं को प्रश्न चिन्हों के कटघरे में खड़ा कर देती हैं । मानव प्रकृति सम्बन्धों के बीच एक कटुता सी व्याप्त हो गयी है और लगता है कि वस्तु, विचार एवं जीवन की शाश्वत लयबद्धता छिन्न-भिन्न हो गयी है । जिसकी परिणिति खण्डित मानव व्यक्तित्वों एवं स्वार्थपरक जीवन दर्शन के विकास के रूप में सामने आने लगी है । सुविधाओं के नाम पर आज के सुसभ्य मानव की नींद हराम हो गयी है । विकास के नाम पर विश्व को सात बार भस्मीभूत करने के उपकरणों का अम्बार लग गया है और सभ्यता के नाम पर सम्पूर्ण मानव स्वच्छन्दता व्यवस्था की क्रीतदासी होकर रह गयी है । प्रकृति जो कि मानव की मां है वह गम्भीर रूप से बीमार है जैसा कि अनावर्षण, अतिवर्षण एवं भू-स्खलन से स्पष्ट है और उसके बेटे बीमार मां का समस्त दूध (ऊर्जा) एकमुश्त प्राप्त करके अपने-अपने स्वास्थ्य एवं सौंदर्य के आंकड़े प्रस्तुत करते जा रहे हैं । मूलतः यही वह मनोवृत्ति है, जिसने पारिस्थितिक असन्तुलन की भयावहता को जन्म दिया है ।

पारिस्थितिक असन्तुलन के मुख्य कारण—

(1) वनों का व्यावसायिक विदोहन एवं औद्योगिक महत्व के एकल प्रजाति वाले वनों का विकास—जहां हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति वृक्ष को ईश्वर का करुणामय रूप मानते हुये कहती थी कि 'एक वृक्ष दस पुत्र समान' वहीं आधुनिक बनिया संस्कृति कहती है Tree meanns वनों के व्यावसायिक विदोहन का सिलसिला जो पानी के जहाजों के निर्माण के लिये सागौन के वनों के कटान से प्रारम्भ हुआ था, रेलवे स्लीपरों के लिये प्राकृतिक वनों के विनाश से होता हुआ आज कागज पल्प उद्योग एवं रेयान उद्योग तक सब विनाश की एक दारुण कथा बन चुका है । सन् 1950 में जहां अमरीका यूरोप तथा जापान की टिम्बर आवश्यकता 4.2 लाख घन मीटर थी वहीं 1980 में 66 लाख घनमीटर हो गयी है अर्थात् 30 वर्षों में 1,200 प्रतिशत अधिक टिम्बर का उपयोग, यह एक चौंकानेवाला और साथ ही झकझोरने वाला तथ्य है ।

प्राचीन ऋषियों ने 'एक पेड़ दस पुत्र समान' वाला सूत्र अकारण ही नहीं दिया था, वस्तुतः वृक्ष की सेवाएं प्राणवायु, पानी, मिट्टी, भोजन, कपड़ा, ऊर्जा, आश्रय, दवा, चारा एवं छाया के दस रूपों में प्रतिफलित होती है। आज का औद्योगिक मानव जहां एक पेड़ का व्यावसायिक मूल्य चार या पांच हजार रुपये निर्धारित करता है वहीं कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तारक मोहन दास ने वैज्ञानिक आंकड़ों द्वारा स्पष्ट किया है कि 50 टन भार वाले एक पेड़ को, जिसकी आयु लगभग 50 वर्ष हो, 50 वर्षों तक जीवित रहने दिया जाय तो आक्सीजन उत्पादन, वायु प्रदूषण पर नियन्त्रण, भू-क्षरण की रोकथाम, भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने, जल चक्र का नियमन, पशु-पक्षियों के लिये आवास, प्रोटीन एवं वसा उत्पादन आदि द्वारा वह मानव समाज को 15 लाख 70 हजार रुपये देता है। दूसरे शब्दों में उक्त पेड़ मानव समाज की जितनी सेवा करता है उतनी सेवा के लिये यदि यान्त्रिका का सहारा लिया जाय तो कुल 15 लाख 70 हजार रुपये व्यय करने होंगे।

प्राकृतिक वनों के कटान के बाद बिना व्यापारिक महत्व वाली औद्योगिक प्रजातियों के तीव्रता से बढ़ने वाले पेड़ लगाये जा रहे हैं वह भी प्रकृति का सन्तुलन (Balance) बिगाड़ रहे हैं, चूंकि यूकिलिप्टस, ल्यूसीनिया एवं पाइन के पेड़ों में न तो पक्षी घोसले ही बनाते हैं और न उन पेड़ों से चारा ही पशुओं को मिल पाता है इसके अतिरिक्त तेजी से बढ़ने वाली प्रजातियां उपजाऊ क्षेत्र को बहुत तेजी से रेगिस्तान में परिवर्तित कर देती हैं, जल-स्तर को गिरा देती हैं तथा उर्वरा तत्वों का अधिक उपयोग करती है जिनसे कि अन्य प्रजातियां स्वतः समाप्त हो जाती हैं, पेड़ों की विभिन्न प्रजातियों के समूलोच्छेद से उन प्रजातियों पर आश्रित जन्तु प्रजातियां भी स्वतः समाप्त होती जाती हैं, जिससे कि निर्विवाद रूप से पारिस्थितिक असन्तुलन बढ़ता है।

(2) वैज्ञानिक कृषि :—गांधी जी की अंग्रेज शिष्या स्वर्गीया सरला बहन ने अपनी चर्चित पुस्तक 'संरक्षण या विनाश' में कहा है "लोग भूल गये कि जमीन खुराक पैदा करने का साधन है वे उसे पैसा कमाने का साधन समझने लगे, इसीलिये सदियों से पायी हुई संरक्षण की पद्धति को छोड़कर वैज्ञानिक कृषि करने लगे ताकि जल्दी पैसे कमा सकें," एल्ड्रिन जिससे कि कीटनाशक के रूप में फसलों को बुहारा जाता है उसके बारे में लेखिका कहती है "एल्ड्रिन के बराबर बड़ी एल्ड्रिन की एक गोली से 400 वेटर चिड़ियां मर सकती हैं, जो मरती नहीं वह क्षीण हो जाती हैं अंडे नहीं देती या अंडों से बच्चे नहीं होते।" इस प्रकार वैज्ञानिक कृषि द्वारा पक्षी प्रजातियों के सामूहिक विनाश का सीधा प्रभाव पारिस्थितिक असन्तुलन को जन्म देता है।

भारतवर्ष में जहां हिमालय क्षेत्र के प्राकृतिक जंगल प्रतिवर्ष अपनी पत्तियों को सड़ाकर खाद के रूप में वर्षा के जल के साथ मैदानी क्षेत्रों में कृषि के लिये प्राकृतिक उर्वरक भेजते थे वहीं वन क्षेत्रों के कटान से मैदानी क्षेत्रों में उर्वरक के स्थान पर रेता आ रहा है। पहाड़ों पर भूक्षय की घटनाएं तथा नदियों में तलहट भर जाने से मैदानों में बाढ़ की विनाश लीलाएं हमारी पहचान बन चुकी हैं।

(3) उपभोक्ता संस्कृति—उपभोक्ता संस्कृति का केन्द्र मानव नहीं है अपितु अर्थ लाभ है, और आज यह स्पष्ट है कि समस्त प्राचीन मानव संस्कृतियों पर उपभोक्ता संस्कृति ने आक्रमण कर दिया है। पूर्व की एक परम्परा रही है अधिक से अधिक भूमि के सम्पर्क में रहने की जो कि स्वास्थ्य के नियमों के अनुकूल भी है किन्तु आज वसन, अध्ययन यहां तक कि भोजन के लिये भी फर्नीचर आवश्यक हो गया है और प्रतिवर्ष बदलते फैशन से फर्नीचर की सतत आपूर्ति के लिये वनों का विनाश जारी है। पूर्व के गर्म देशों के स्कूलों में विद्यार्थियों के लिये फर्नीचर इसी उपभोक्ता संस्कृति के आक्रमण का प्रमाण है।

उपभोक्ता संस्कृति में मानव समाज के भोजन एवं परिधान का निर्धारण बाजारों में होता है, यह व्यक्तिगत स्वेच्छा का प्रश्न नहीं रह गया है। आपको वही पहनना है जो सामयिक घोषित किया गया है तथा वही भोजन प्राप्त करना है जो बाजार में उपलब्ध है, इसी कारण मांसाहार आधुनिक भोजन की अनिवार्यता बन गया है। जबकि आंकड़ों से स्पष्ट है कि यदि एक एकड़ भूक्षेत्र में कृषि की जाय तो दो टन तक अन्न मिलेगा और यदि फलों वाले वृक्ष लगाये जायें या अक्षरोट आदि के पेड़ लगाये जाएं तो 15 से 20 टन तक भोजन सामग्री मिलेगी जबकि उसी एक एकड़ का उपयोग मांस उत्पादन के लिये किया जाय तो मात्र एक क्विन्तल भोजन ही प्राप्त हो सकेगा।

समाधान की दिशा—

(1) शत प्रतिशत घनत्व वाले वन क्षेत्रों का विस्तार—भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है 'स्थावराणाम हिमालय' और मौजूदा परिस्थितियों में हिमालय सर्वाधिक अस्थिर हो गया है, यह बात प्रतिवर्ष हिमालय क्षेत्र में होने वाले भूस्खलनों से स्पष्ट है। इसके लिये हिमालय सहित सम्पूर्ण विश्व के भू-खण्डों में 35 प्रतिशत क्षेत्र में सौ प्रतिशत घनत्व वाला मिश्रित वन क्षेत्र विकसित करना होगा ताकि भूस्खलन की समस्या का स्थायी समाधान मिल सके और पारिस्थितिक सन्तुलन स्थापित हो सके। नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में पूर्णतः संरक्षित वनों का विस्तार किया जाना चाहिये ताकि भूक्षय से नदियों में तलछट बढ़ने से होने वाले जल प्लावन के महाविनाश से होने वाले पारिस्थितिक असन्तुलन की समस्या समाप्त हो सके।

(2) वैकल्पिक ऊर्जा व्यवस्था—सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा के क्षेत्र में तीव्रता से अन्वेषण किया जाना चाहिये, ताकि प्राकृतिक भण्डारों के उत्खनन से और उनके उपयोग से होने वाले प्रदूषण से उत्पन्न पारिस्थितिक असन्तुलन को सीमित किया जा सके। इस दिशा में बायोगैस तथा बिजली बनाने वाले छोटे-छोटे उपकरणों का विकास किया जाना चाहिये। विशालकाय बांधों से भी पारिस्थितिक सन्तुलन बिगड़ता है।

(3) भगवान बुद्ध का उपदेश—भगवान बुद्ध के समस्त उपदेशों में से आज जिस उपदेश को पश्चिमी राष्ट्रों में सर्वाधिक हितकारी माना जा रहा है वह यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में पांच वृक्षों का रोपण करे तथा पांच वर्षों तक उन वृक्षों की सेवा (निगरानी) करे।

सम्पूर्ण बौद्ध दर्शन का केन्द्र ही तृष्णा क्षय है अर्थात् अभिलाषाओं का निरन्तर ह्रास। आज यह बात सर्वाधिक प्रासंगिक है। यदि समय रहते मानव समुदाय विलासपूर्ण जीवन की गिरफ्त से मुक्त नहीं हुआ तो वह महाविनाश से बच ही नहीं सकता और बिना तृष्णाक्षय के अनुशीलन के पारस्थितिक सन्तुलन भी असम्भव है।

(4) वृक्ष खेती की अनिवार्यता :—पारस्थितिक सन्तुलन कायम रखने के लिये मानव समाज को अन्न खेती से वृक्ष खेती में लगाना होगा तथा फलों को अपना मुख्य आहार बनाना होगा। आज की बढ़ती जन-संख्या की परिस्थितियों में अन्न उत्पादन से भोजन समस्या हल नहीं की जा सकती फिर प्रतिवर्ष जो हजारों टन ऊपरी मिट्टी बहकर समुद्रों में जा रही है उससे भी पारस्थितिक असंतुलन बढ़ता ही है, अकेले भारतवर्ष में ही प्रतिवर्ष 600 करोड़ टन ऊपरी मिट्टी बहकर बंगाल की खाड़ी में जमा हो रही है।

(5) शूमाखर की प्रासंगिकता—इस सदी के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री ई० एफ० शूमाखर के Smell is beautiful के सिद्धान्त को, सभी देशों को अपनी अर्थव्यवस्था एवं नियोजन का आधार मानना होगा और ecology को स्थायी मानकर चलना होगा तभी परिस्थितिक सन्तुलन की स्थितियां स्थापित हो सकेंगी। भारी उद्योगों से असन्तुलन तो बढ़ता ही है साथ ही प्रदूषण की भी असामान्य परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं।

आज यह स्पष्ट है कि Eco logical disbalance एक जागतिक समस्या बन चुका है। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अधिकार सम्पन्न समिति द्वारा कार्य किया जाना चाहिए तथा उस समिति की अनुशंसाओं का सभी राष्ट्रों द्वारा अनुपालन किया जाना चाहिए और समस्त मानव समाज को परिस्थितिक संतुलन स्थापित रखने के लिए यजुर्वेद के इस कथन पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए कि 'हम विचार एवं विवेक के साथ ऐश्वर्य चाहते हैं।'

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Administration
17-B,Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016
DOC. No. 2437
Date 30.4.85

विद्यालय में नैतिक शिक्षा क्यों और कैसे?

श्री अमर नाथ पाण्डेय,
प्रधानाध्यापक,
प्रा० पा० बागेश्वर (अल्मोड़ा)।

प्रस्तावना—

'नैतिक' शब्द 'नीति' का विशेषण है 'नीति' शब्द 'नी' धातु से बना है, जिसका अर्थ– ले जाना या मार्गदर्शन कराना है, इस प्रकार नैतिक शब्द का अर्थ हुआ नीति का आचरण करने वाला, नैतिक शिक्षा का अर्थ है—नीति अर्थात् सदाचार सिखाने वाली शिक्षा, छात्रों को सदाचारी संयमी, दयालु, परोपकारी, सहिष्णु एवं स्वावलम्बी बनाने वाली शिक्षा नैतिक शिक्षा कहलाती है।

नैतिक शिक्षा की परिभाषा—

समाज को स्वस्थ सन्तुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष को उचित रूप से प्राप्त कराने के लिए जिन विधि निषेध मूलक सामाजिक, व्यवहारिक तथा आचारिक नियमों का विधान देश-काल तथा पात्र के सन्दर्भ में किया जाता है, उसे नैतिक शब्द से परिभाषित किया जाता है।

विद्यालय में नैतिक शिक्षा का महत्व—

विद्यालय में नैतिक शिक्षा का बहुत महत्व है। छात्रों को नैतिक शिक्षा प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि समुचित विषय सामग्री का चयन किया जाय। इस कार्य में नैतिक सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों जैसे सत्यता, ईमानदारी, जीवों पर दया, बड़ों का सम्मान, दुखी-दरिद्र एवं उत्पीड़ित व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति आदि गुणों पर बल दिया जाय। नैतिक शिक्षा के अभाव में न तो छात्रों का विकास ही हो पाता है और न उन्हें साहित्य का ज्ञान ही हो पाता है। वास्तव में चरित्रवान छात्र ही आदर्श की स्थापना करता है और समाज कल्याण की ओर उन्मुख होता है। अतः विद्यालय में नैतिक शिक्षा का पाठ अवश्य पढ़ाया जाना चाहिए।

मानव जीवन में नैतिकता का महत्व—

जब से मनुष्य ने सभ्यता के युग में प्रवेश किया, तभी से उसको समाज में रहने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। उसने स्वयं की शान्ति के लिए यह कोशिश की कि कुछ ऐसे नियम होने चाहिए। जिनके अन्तर्गत अन्य लोग उसके इस व्यवहार के कारण उसके साथ भी नैतिकता का व्यवहार करें, इससे समाज में सभी व्यक्ति शान्ति एवं प्रसन्नता से रह सकेंगे तथा समाज में स्थायित्व आयेगा।

उक्त नियम तथा मान्यताएं जो कि मनुष्य के सामान्य जीवन-यापन में सहायक होने के साथ-साथ उसके भावी जीवन को समाज के लिए तथा देश के लिए अनुकरणीय बना दें, नैतिक नियमों के अन्तर्गत आती हैं। कभी-कभी इन नियमों के पीछे कोई कानूनी जोर नहीं होता। उसका पालन करने के लिए मनुष्य की अन्तरात्मा को छोड़कर अन्य कोई शक्ति उसे विवश नहीं कर सकती, तो भी व्यक्ति अपने संस्कारों के आधार पर इनका पालन करता है।

नैतिक नियमों की शक्ति—

नैतिक नियमों के पीछे कितनी शक्ति है, इसका आभास हमें प्राचीन धार्मिक साहित्य एवं जीवनियों से मिलता है, राम, कृष्ण, राजा हरिश्चन्द्र, श्रवण कुमार की कहानियां हमें नियमों अथवा मर्यादाओं का दिग्दर्शन कराती हैं। इस सम्बन्ध में भगवान राम की मर्यादा, कृष्ण के उपदेश, श्रवण कुमार की मातृ-पितृ भक्ति, राजा हरिश्चन्द्र की सत्यता एवं राजा बलि की दान-शीलता स्मरणीय होगी। इसी कारण से नैतिकता के मापदन्ड निर्धारित किये गये हैं।

विद्यार्थियों के लिए महत्व—

विद्यार्थियों के लिए जिस प्रकार से विज्ञान व अन्य सामाजिक विषयों का ज्ञान उसके विकास करने के लिए आवश्यक है उसी प्रकार नैतिक शिक्षा भी उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए परम आवश्यक है। वैसे विद्वानों का मत है कि बच्चा नैतिकता की प्रथम शिक्षा माता के चुम्बन से व पिता के दुलार से सीखता है, तो पूर्ण रूपेण आदर्श व्यक्ति बनाने में नैतिकता का ज्ञान होना आवश्यक है, अतः विद्यालयों के पाठ्यक्रम में प्राचीन मनुष्यों के ग्रन्थ जैसे— महाभारत गीता, रामायण तथा पन्चतन्त्र की कहानियां तथा विभिन्न महापुरुषों के जीवन चरित्रों का अध्ययन अधिक उपयोगी रहता है। साथ ही विद्यार्थियों को नैतिक आदर्शों की अवहेलना किए जाने के गम्भीर परिणामों से अवगत कराया जाना है, जैसे रामायण के पात्र राम एवं रावण के कर्मों का परिणाम आदि।

नैतिक नियमों की मर्यादा का पालन—

बेन्थम जैसे अर्थशास्त्री ने भी मनुष्य को धन कमाने के लिए नैतिक नियमों की मर्यादा का पालन करना आवश्यक बताया है, इसी प्रकार 'हीगेल' का प्रत्ययवाद तथा कार्लमार्क्स का समाजवाद इस कथन की सत्यता को प्रमाणित करते हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब भी किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा मर्यादा का उल्लंघन किया गया, अथवा मनुष्यों की समानता को आघात पहुंचाया गया, तब बड़ी-बड़ी क्रान्तियों का जन्म हुआ। नैतिक नियमों का पालन करना अति आवश्यक है। व्यक्तियों के सामाजिक व व्यक्तिगत अधिकारों के हनन के कारण "लुई सोलहवें" को गद्दी त्यागनी पड़ी। "जार" के विरुद्ध 'लेनिन' ने आवाज उठायी तथा अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा।

अतः नैतिक शिक्षा का अध्ययन भी छात्र छात्राओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए क्योंकि नैतिक शिक्षा का ज्ञान किसी भी बालक के सुकोमल हृदय में अपनी छाप छोड़ता है।

महात्मा गांधी ने अपनी जीवनी में यह स्पष्ट किया है कि "उनके जीवन में माता द्वारा दी गयी शिक्षाओं तथा श्रवण कुमार तथा हरिश्चन्द्र नाटक का अमिट प्रभाव रहा"।

महाराणा प्रताप के सामने कुछ नैतिक प्रतिष्ठा का सवाल ही उपस्थित हुआ था कि उन्होंने अकबर की पराधीनता स्वीकार नहीं की और उसने संधि भी नैतिक मर्यादाओं के आधार पर ही की। अतः इतने बड़े महत्वपूर्ण विषय को पाठ्यक्रम में शामिल करना प्रत्येक देश व समाज का कर्त्तव्य है।

नैतिक शिक्षा का ज्ञान विद्यार्थियों को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की प्रेरणा देता है।

इस प्रकार नैतिक शिक्षा व्यक्ति के जीवन निर्माण में नींव का काम करती है तथा एक नैतिकता से परिपूर्ण व्यक्ति ही सदाचारी व्यक्ति भी होता है। वास्तव में एक सदाचारी व्यक्ति ही नैतिक नियमों का पालन कर सकता है। नैतिकता का पाठ व्यक्ति अपने परिवार व संगति से ही सीखता है, तथा उससे प्रभावित होता है।

बालकों का हृदय तो एक कच्ची मिट्टी के घड़े के समान होता है। जिसमें जो कुछ भी अंकित किया जाय वह हमेशा अमिट रहता है। बालक के विकास में संगति का भी बड़ा प्रभाव होता है। बेर के पेड़ के साथ जब केले का पेड़ उग जाता है, तो हवा के झोंके से बेर के कांटे अपने साथी केले के पत्तों को चीर देते हैं। यह सब संगति का असर है। इसी प्रकार व्यक्ति भी संगति के असर से अच्छा व खराब होता है। थोड़ी देर की साधुओं की संगति से एक दुर्दान्त डाकू वाल्मीकि ऋषि में बदल गया।

अतः प्रारम्भ से लेकर व्यक्ति आज तक नैतिकता के गुणों को अपने-अपने तरीकों से अपनाते आये हैं। यह एक ऐसा गुण है जिसे न तो स्पर्श किया जाता है, न ही आंखों से देखा जाता है। इस सुगन्ध से परिपूर्ण व्यक्ति हमेशा आदर व प्रतिष्ठा के पात्र बनते हैं और इस गुण में ही नैतिकता व सहिष्णुता जैसे सभी गुण छिपे हैं।

सुझाव—

जैसा ऊपर विश्लेषण करने की कोशिश की गयी है कि—नैतिक नियमों का पालन करना अथवा इन नियमों की मर्यादा रखना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

हम रोज समाचार पत्रों में पढ़ते तथा रेडियो में सुनते हैं कि—अमुक आदमी की हत्या कर दी गयी है, अथवा अमुक जगह डकैती पड़ी हुई है। यह सब मनुष्यों के दुष्कर्मों का परिणाम है। यदि मनुष्य में जरा सी भी नैतिकता का गुण होता तो वह दुष्कर्म नहीं करता। यदि यह स्थिति कुछ और रही तो उक्त प्रकार के दुष्कर्म ही नैतिकता के पर्याय बन जावेंगे, क्योंकि व्यक्ति हमेशा उन्हीं घटनाओं के बारे में सोचता है, जो कि उसके आस-पास घटित होती हैं, और यह मनोविज्ञान का नियम है कि—"व्यक्ति को जो घटनाएं सबसे अधिक प्रभावित करती हैं, उसका प्रभाव क्रिया-कलाप में आ जाता है।"

फिल्म देखने के बाद किसी विशेष चरित्र से प्रभावित होकर उनकी नकल करना या उनका प्रतिरूप स्वयं देखना, किसी प्रसिद्ध खिलाड़ी को देखकर स्वयं को भी उस खेल में रुचि रखना व स्वयं उस खिलाड़ी जैसा समझना इस मानसिकता के उदाहरण हो सकते हैं। महात्मा गांधी अपनी माता पर अटूट श्रद्धा रखते थे। और दिये गये वचनों का पालन करते थे, जैसे—

विदेश में जाकर मांस भक्षण न करना तथा मदिरा का सेवन न करना, आदि-आदि।

उनके साथ घटी घटनाओं में मातृ-पितृ भक्ति की बातें व सत्यता की बातें मुख्य रही थी।

मनोविज्ञान का एक नियम और भी है कि—मनुष्य हमेशा जिज्ञासु प्रवृत्ति का होता है, और जिज्ञासा हमेशा उस ओर भागती है जो अप्रकट और अज्ञात है, जैसे—हम किसी बच्चे से कहें कि—आग को मत छूना जल जाओगे, तो भी बच्चा उसे छूने का प्रयास करेगा, क्योंकि—हमारी ना करने वाली बात से उसमें जिज्ञासा उत्पन्न होगी।

इसी तरह यदि हम किसी व्यक्ति से कहें कि—हमारे कमरे में मत झांकिये, तो अकस्मात ही व्यक्ति के मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि—ऐसा क्या है, जिससे कमरे में झांकना मना है, और वह किसी न किसी प्रकार से कमरे में झांककर जिज्ञासा को शान्त करेगा।

अतः मनुष्य के इन गुणों का उपयोग यदि उचित आदर्शों के लिए किया जाय, तो वह निश्चित रूप से विलक्षण प्रतिभा प्राप्त करेगा।

उपसंहार—

हम सबको मिलकर यह प्रयास करना चाहिए कि—हम अपने बच्चों तथा पड़ोसियों को नैतिकता की शिक्षा दें व अच्छा आचरण व्यवहार में लायें, इससे हमारा ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण समाज का, सम्पूर्ण देश का तथा सम्पूर्ण मानवता का नैतिक पक्ष उज्जवल होगा।

राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका

लेखक—शिव सनेही तिवारी,

प्रधानाध्यापक, प्राथमिक विद्यालय अमौर, भीतरगांव,

जनपद—कानपुर ।

सभी विकसित एवं विकासशील देशों में सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में पूर्ण विकास हेतु प्रौढ़ शिक्षा आज की दुनियां में एक बहुत ही आवश्यक आवश्यकता साबित हो रही है । हमारा देश भारत गांवों का देश है । गांव पिछड़े हैं । अतः देश भी पिछड़ा है । किन्तु केवल गांव ही क्यों शहरों में भी मजदूरों आदि का एक बहुत बड़ा समूह निरक्षर है । अतः हमारे इस विकासशील देश के पल–पल क्षण–क्षण बदलते हुए समाज में प्रौढ़ शिक्षा एक तात्कालिक आवश्यकता है ।

हमारी वर्तमान सरकार ने एक बृहद् प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम लागू किया है । निश्चय ही इस दिशा में आश्चर्यजनक परिवर्तन देखने में आये हैं । परन्तु धनाभाव एवं निरक्षरता की अहम् समस्या का हमें सामना करना पड़ रहा है । सामान्यतः हर बड़े देश में इन बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ता है । गांधी जी ने इन समस्याओं की ओर हम सभी का ध्यान आकर्षित किया था । वह चाहते थे कि इस प्रकार के संगठन स्थापित किए जावें, जिसमें सभी बालक एवं वृद्ध, निर्धन एवं धनवान, सरकारी तथा स्वैच्छिक संस्थाएं सभी आपस में मिलकर समाज के हानिकर तत्वों को दूर करें । गांधी जी चाहते थे कि सभी को साक्षर बनाया जाय । इस प्रकार के संगठन ही निरक्षरता मिटाने के सही साधन होंगे । यही सच्ची प्रौढ़ शिक्षा होगी ।

प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ केवल पुस्तक वाचन ही नहीं है बरन वह कि हम प्रौढ़ों को ऐसा बना दें, जिसमें वे स्वयं सीखने की प्रक्रिया को जारी रखें । छोटी–छोटी बातों के लिए वह दूसरों का मुंह न ताके । अपनी रुचि एवम् क्षमता के अनुकूल व्यवसाय या वृत्ति खोज सकें या उन्हें इस लायक बना सके, जिससे वे जान सकें कि किस व्यवसाय के लिए उनको आवश्यकता है । प्रौढ़ शिक्षा से उसे वह कौशल हासिल हो सके, जिससे वह आर्थिक विकास के क्षेत्र में अधिक योग्य एवम् कुशल साबित हो सके । राजनैतिक जीवन में भी प्रौढ़ शिक्षा इनको नियम कानून का ज्ञान कराये और इस निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए इसमें परिपक्वता लाये । पारिवारिक जीवन में भी प्रौढ़ की भूमिका नागरिकों की भूमिका की अपेक्षा अधिक योग देने वाली हो ।

प्रौढ़ शिक्षा संचालन में अनेकानेक समस्यायें सामने प्रस्तुत होती हैं । संक्षेप में हम कतिपय समस्याओं पर प्रकाश डालना चाहते हैं । सर्वप्रथम गरीबी तथा निरक्षरता की समस्या हमारे सामने उपस्थित होती है । हमारे देश का प्रौढ़ बहुत ही निर्धन है हर क्षण वह रोटी–रोजी की तलाश में बिताया करता है । प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि प्रारम्भ में यदि पचास प्रौढ़ अपने नाम लिखाते हैं तो अन्ततः बीस ही प्रौढ़ अपना पाठ्य–क्रम पूर्ण कर पाते हैं ।

स्कूलों एवम् अध्यापकों के उपयोग की भी कुछ समस्यायें हैं । अध्यापक जहाँ इस कार्य के लिए एक बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है वहाँ उसके कार्य–भार में वृद्धि एवं अन्य समस्यायें विचारणीय हैं ।

प्रौढ़ के दैनिक जीवन से सम्बन्धित पाठ्य–क्रम के अभाव की समस्या भी हमारे सामने आती है । प्रौढ़ों के लिए ऐसी शब्दावली एवम् साहित्य लिखित किया जाय जो उनके व्यवसाय से सम्बन्धित हो तथा पढ़ने वालों को तुरन्त प्रभावित कर सके । साहित्य इतना नवीनतम हो जिसका सीखने वाला अपने व्यवसाय में प्रयोग कर सके ।

प्रौढ़ों को पढ़ाने की पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो अक्षर–ज्ञान कराने के साथ–साथ उसके व्यवसाय के लिए आवश्यक नवीन यान्त्रिक तथा अन्य कौशल अथवा सुधरे हुए तरीके सिखा सके ।

प्रौढ़ शिक्षा प्रशिक्षक यदि स्वयं उत्तम किसान, इन्जीनियर, डाक्टर, नर्स, कुशल कारीगर इत्यादि हों तो अच्छा है । इसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये ।

शिक्षा के समस्त पहलू अच्छी तरह बुने होने चाहिये । इसे साकार रूप देने के लिये डाक द्वारा शिक्षा सामूहिक चर्चा, रेडियो, दूरदर्शन आदि अनेक पद्धतियां अपनायी जानी चाहिये । प्रौढ़ शिक्षा के प्रभावशील और पर्याप्त कार्य–क्रमों के क्रियान्वयन हेतु प्रौढ़ शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण की उच्च प्राथमिकता होनी चाहिये इसके विकास हेतु तरह–तरह की गोष्ठियां आयोजित की जानी चाहिये तथा साक्षरता कार्य के ढंग व तकनीक में शोध कार्य किये जाने चाहिये ।

प्रौढ़ शिक्षा के लिए प्रत्येक प्रकार की शिक्षण संस्था को अपने द्वार खुले रखने चाहिये । यह संभव है कि प्रौढ़ उस स्थान पर आना पसन्द न करें, जहां उनके बच्चे पढ़ने जाया करते हैं । इसके लिए व्यवस्था में कुछ हेर–फेर करके स्कूलों को सामुदायिक केन्द्रों का रूप दे दिया जाय तो ग्रामीण एवम् नगर क्षेत्रों में शिक्षा क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकती है । स्कूलों को प्रौढ़ शिक्षा से जोड़ने के लिए शिक्षकों को शिक्षण पद्धति में प्रशिक्षित करना परमावश्यक है । उसके लिए सेवारत प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए । यदि विद्यालय अपने दायित्व का विस्तार करके सामुदायिक केन्द्र बन जायें तो वे राष्ट्र की धमनी बन सकते हैं ।

राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका

श्री हर नारायण वर्मा,
प्रधानाध्यापक,
प्राथमिक विद्यालय, बालवीयनगर.
कोंच, जनपद जालौन।

राष्ट्रीय विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका सुनिश्चित करने के पूर्व हमें विचार करना होगा कि किन-किन परिस्थितियों में किसी राष्ट्र विशेष को विकसित या अविकसित कहा जा सकता है। किसी भी राष्ट्र के सर्वांङ्गीण विकास के लिये उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में विकास का मूल्यांकन करना होगा। विश्व में आज जिन राष्ट्रों को विकसित कहा जा सकता है यदि हम उनके विकास क्रम का मौलिक आधार देखें तो स्पष्ट रूप से विदित होगा कि शिक्षा के माध्यम से ही इसकी गणना इस कोटि में है। राष्ट्र के प्रमुख तत्वों में जनसंख्या उसका एक अनिवार्य तत्व है। जनसंख्या ईश्वरीय संरचना का सचेतन अंग होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। किसी भी राष्ट्र की जनसंख्या यदि सुशिक्षित है तो उसका सर्वांगीण विकास अत्यन्त तीव्र गति से अल्पावधि में होना संभव हो जाता है। विगत महायुद्धों की विनाशकारी विभीषिका से विनष्ट जापान इतने कम समय में विकासशील राष्ट्रों की गणना में आ सके इसका रहस्य इन देशों की जनता का सुशिक्षित होना ही है। अतः यह निर्विवाद सत्य है कि राष्ट्रीय विकास का मूल शिक्षा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह शिक्षा क्या है ? जिसके माध्यम से राष्ट्र का विकास संभव है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने शिक्षा की परिभाषा निम्न प्रकार से की है "शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक या मनुष्य के शरीर मन तथा आत्मा में जो सर्वोत्तम है उसका उद्घाटन करना है" अर्थात् मानवीय आत्मोद्घाटन करने में सक्षम शिक्षा जीवन के लिए अपरिहार्य है। इस तथ्य को स्वीकार करते हुये हमारी राष्ट्रीय सरकार ने देश में शिक्षा प्रसार की कई योजनाओं को संचालित किया है। चूंकि हमारा देश सदियों से पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा होने के कारण शिक्षा के प्रसार में विश्व के तमाम विकासशील देशों की अपेक्षा पिछड़ता चला गया। यहां तक कि जब हम स्वतन्त्र हुये तो देश की 90 प्रतिशत से भी अधिक जनता अशिक्षा के अन्धकार में निमग्न थी। अज्ञान के अंधकार में डूबा यह देश अनेकों सामाजिक कुरीतियों की चपेट में आ गया। बाल विवाह के कारण अनेकों छात्र-छात्राओं को बीच में ही विद्यालय छोड़कर घरेलू कार्यों में जुट जाना पड़ता था। लड़कियों को मात्र घर की मशीन माना जाता था। इन्हें उच्च शिक्षा देना व्यर्थ ही माना जाता था। शिक्षा के प्रति इस प्रकार की उदासीनता ने स्वतन्त्र देश को विकासोन्मुख राष्ट्रीय सरकार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। फलस्वरूप शिक्षा प्रसार की विभिन्न योजनायें निर्मित कर उनका कार्यान्वियन किया गया।

देश के कर्णधारों ने शिक्षा योजनाओं में प्रौढ़ शिक्षा को भी प्रमुख स्थान दिया। प्रौढ़ शिक्षा को महत्व देना आवश्यक समझा गया क्योंकि स्वतन्त्रता के पश्चात् देश ने प्रजातन्त्र प्रणाली को अपनाया और उसी के आधार पर देश का शासन करना प्रारम्भ किया गया था। प्रजातन्त्र सरकार, प्रजा के द्वारा चुने गये व्यक्तियों की सरकार होती है। समस्त जनता को मत देने का अधिकार प्राप्त हो जाने के कारण शिक्षा के प्रसार की परम आवश्यकता प्रतीत हुई। एक निरक्षर अपने राजनैतिक अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति कभी भी सचेत नहीं हो सकता है। सभी शिक्षाविदों का स्पष्ट मत बना कि जब तक देश की जनता को साक्षर न किया जाय तब तक प्रजातन्त्र की सफलता संदेहास्पद रहेगी। देश में व्याप्त निरक्षरता को दूर किये बिना देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विकास की कल्पना करना ही व्यर्थ है। अतः प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार पर अत्यन्त बल दिया गया।

प्रारम्भ में इस प्रौढ़ शिक्षा का तात्पर्य अत्यन्त सीमित अर्थ में था। अधिकांश व्यक्तियों के अनुसार प्रौढ़ शिक्षा का तात्पर्य था कि निरक्षर व्यक्तियों को इस योग्य बना देना कि वे अपना नाम लिख पढ़ सकें। परन्तु देश की प्रगति के साथ-साथ प्रौढ़ शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ। प्रौढ़ शिक्षा ने अब समाज शिक्षा का रूप ले लिया है। इसके अन्तर्गत प्रौढ़ों को मात्र साक्षर ही नहीं बनाया जाता है अपितु उन्हें समाज का एक सचेत जागरूक नागरिक बनाये जाने का भी प्रयास किया जाता है। देश को अब ऐसे नागरिकों की आवश्यकता है जो कि देश के सांस्कृतिक तथा औद्योगिक विकास में अपना योग दे सकें अतः प्रौढ़ शिक्षा में ऐसा पाठ्यक्रम सम्मिलित किया गया है जिससे व्यक्ति अपने देश की सांस्कृतिक परम्परा को समझते हुये देश के सर्वांगीण विकास में यथा सम्भव सहयोग कर सकें। प्रौढ़ों को विभिन्न लघु उद्योगों, कृषि में उन्नति के उपायों, सामाजिक असमानता को दूर करने आदि विभिन्न उन्नति पक्ष तथ्यों से अवगत कराया जाता है। प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से आशा की जाती है कि इससे प्रजातन्त्र की नींव गहरी एवं शक्तिशाली होगी तथा देश का सर्वांगीण विकास होगा।

प्रौढ़ शिक्षा प्रसार योजना के अन्तर्गत देश के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा उत्तर प्रदेश सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रात्रि पाठशालायें, पुस्तकालय आदि की स्थापना की गयी। अनेकों स्थानों पर इसके प्रसार में श्रव्य दृश्य सामग्री का भी प्रयोग किया गया। कला साहित्य तथा अन्य क्रियाओं द्वारा प्रौढ़ों के अन्दर कलात्मक प्रवृत्तियों को जाग्रत करने का पूरा-पूरा प्रयास किया जा रहा है।

सरकार द्वारा प्रौढ़ शिक्षा पर इतना अधिक व्यय किये जाने के पश्चात् भी देश में प्रौढ़ों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पा रहा है । इस पुण्य कार्य की सफलता में कुछ बाधायें भी हैं—

(1) देश की विशालता एवं जनसंख्या का आधिक्य—हमारा देश इतना विशाल है कि देश के कोने-कोने तक सुदूर क्षेत्रों में शिक्षकों को नियुक्त करना अत्यन्त कठिन है । जनसंख्या का आधिक्य भी बाधक है । अधिकांश लोगों को चाहते हुये भी शिक्षा देना कठिन हो रहा है ।

(2) देश की निर्धनता—हमारे देश की अधिकांश जनता निर्धन है । सबेरे से शाम तक कठिन परिश्रम करके परिवार का पालन-पोषण करना ही दूभर है ऐसी स्थिति में शिक्षा ग्रहण करने के लिये सोचना भी कठिन है ।

(3) अध्यापकों का अभाव तथा पाठ्यक्रम का अनिश्चय—प्रौढ़ों को शिक्षा देने के लिये सरकार ने अध्यापकों को प्रशिक्षण देने के लिये केन्द्रों की स्थापना नहीं की है और इस शिक्षा का अब तक पाठ्यक्रम भी सुनिश्चित नहीं हो सका है ।

(4) स्वयंसेवकों की कमी—देश की सरकार ही इस समस्या को हल नहीं कर सकती । जनता का कर्तव्य है कि वह समाज शिक्षा के प्रसार में अपना पूर्ण सहयोग दे । इसकी सफलता के लिये ऐसे स्वयंसेवकों की आवश्यकता है जो देश में साक्षरता का प्रसार बिना किसी पुरस्कार की भावना से करें । ऐसे स्वयंसेवक जनता में घूम-घूम कर प्रौढ़ों को शिक्षित करें । देश के नवयुवकों को इस पुण्य कार्य में हाथ बटाना चाहिये ।

अतः स्पष्ट है कि यदि प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार में समुचित व्यवस्था करके देश के कोने-कोने में भरपूर प्रबन्ध किया जाय तो राष्ट्र का बहुमुखी विकास यथाशीघ्र संभव है । इस प्रकार राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विकास में प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

Sub. National Systems Unit.
National Institute of Educational
Planning and Administration
... New Delhi-110016
DOC. No. 2437
Date 30.4.18

पी0 एस0 यू0 पी0—16 शिक्षा—8-6-83—500 प्रतियां (पी0 डी0)

NIEPA DC
D02437